सलाखों में कैद आवाज़ें

भीमा कोरेगांव षड्यंत्र की कहानी

कवर: सुनील अभिमान अवाचार

कवर के बारे में:

मेरी कला एक बंद चार दीवार वाले कमरे में नहीं उभरी है, बल्कि मेरे सामाजिक संघर्ष के प्रति मेरी त्वरित संवेदनशीलता व बेचैनी से निकली है। और मेरी कला का उद्देश्य सामाजिक, सांस्कृतिक व राजनैतिक परिदृश्य के बदलते स्वरूप को दर्शाना है। ऐतिहासिक भीमा कोरेगांव युद्ध की 200वीं सालगिरह के मौके पर घटित हिंसा और राजनीतिक षड़यंत्र से मैं बहुत विचलित था। मेरा मानना है कि किसी भी तरह की हिंसा मानवता के खिलाफ है, और इन्सानी जीवन को दर्दनाक बनाती है। मैं हमेशा आम इन्सान के दर्द और उनके संघर्षों में साथ खड़ा रहा हूं, और मेरा काम शोषण और गुलाम बनाने की व्यवस्था की खिलाफत करता है। इस चित्र में लकीरें विद्रोह को रेखांकित करती हैं और नीला झंडा व सफेद कबूतर शांति और नीले की सांस्कृतिक राजनीति को इंगित करता है।

भूमिका

प्रिय दोस्तों,

यह पुस्तिका एक साझा प्रयास है। यह प्यार से की गयी मेहनत है। प्यार, उन लोगों के लिए जो जेल में बंद हैं, अपने परिवारों और दोस्तों से दूर। जिन्होंने न चाहते हुए भी अपनी आज़ादी छोड़ दी है, सिर्फ हम सब के लिए। यह श्रद्धांजलि है, उनके परिवारों और दोस्तों के लिए जो इस मुश्किल वक्त पर अपने आप को संभाले हुए हैं, और उनके बच्चों के लिए जो रोज़ उनकी अनुपस्थिति से जूझते हैं।

यह पुस्तिका उनके प्यार और उनकी दोस्तियों को याद करने की एक कोशिश है। वह प्यार और दोस्तियां जिनसे यह दुनिया एक बेहतर जगह बनी है। हमारे समय के वो जांबाज हैं। वो हमें लड़ना, और प्यार करना भी सिखाते हैं। ऐसे खंडित समाज में वो हमें याद कराते हैं कि साझेदारी, समर्थन, लोगों की आवाज़, हमारी आवाज़ में ही प्यार गूंजता है। वो हमें धैर्य सिखाते हैं कि चाहे हमारी आज़ादी भी खतरे में चली जाय, फिर भी एक 20 साल के इन्सान की नये ज़माने की परेशानियों को नज़रअन्दाज़ नहीं किया जा सकता। कि अत्याचार के बावजूद उनकी हंसी उनकी आंखों तक पहुंचती है। कि वो आपको याद कराएंगे कि कहीं का होना क्या होता है, और उस चीज़ का हिस्सा होना आपसे और आपके अस्तित्व से कहीं ज़्यादा बड़ा है।

हम एक अंधेरे काल में प्रवेश कर चुके हैं, या ऐसे बोलें कि पहले से भी जहां ज़्यादा अंधेरा है। लेकिन हाल में इतिहास पर चर्चा करते हुए एक दोस्त ने याद कराया कि ज़ुल्म के साम्राज्य भी बसे हैं और बहुत फले-फूले हैं, लेकिन फिर वो भी तोड़े गए हैं। यह भी बीत जायेगा। हम मिलकर एक बेहतर दुनिया बसायेंगे। हम न सिर्फ हमारे हर एक मौलिक मूल्यों के लिए, जिसे वर्तमान सरकार हमला कर पूरी तरह से नष्ट कर देना चाहती है, फिर से लड़ेंगे बल्कि एक बेहतर दुनिया भी रचेंगे। और इसी उम्मीद के साथ हम आपके समक्ष यह पुस्तिका लाए हैं।

सलाखों के पीछे कैद उन 16 एक्टिविस्ट द्वारा लिखी गयी कहानियों पर विशेष ध्यान दिलाते हैं...और उन सब को, जिन्हें हम नहीं जानते लेकिन जिन्होंने इस दुनिया का जो बचा है, वो बचाया है, हमारी श्रद्धांजलि।

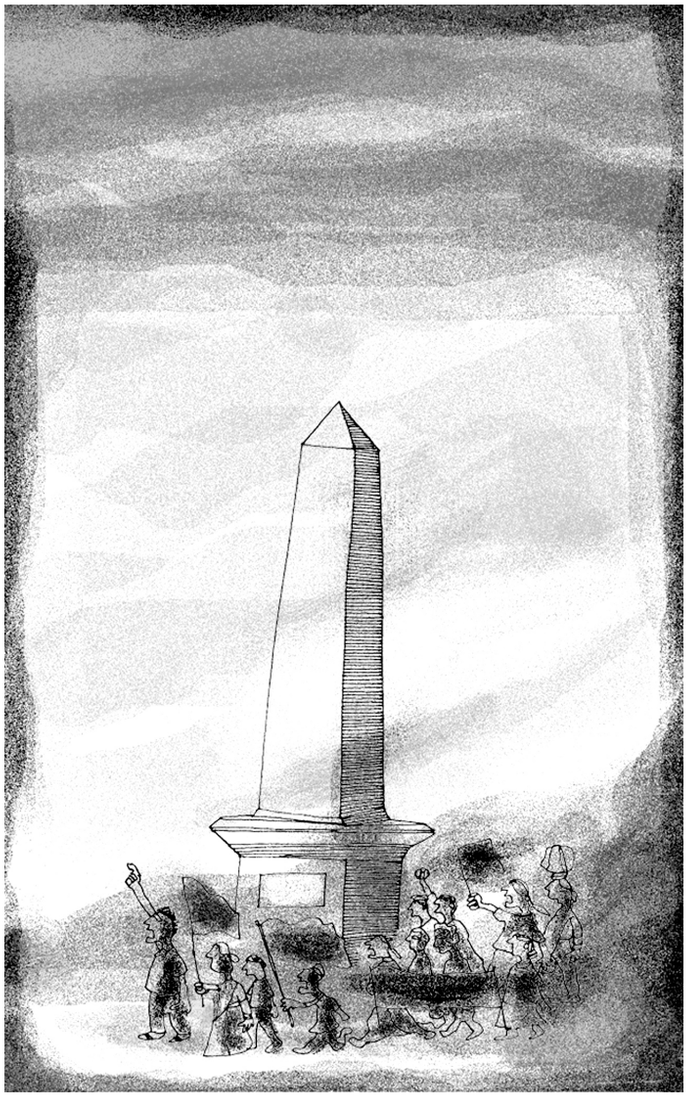

भीमा कोरेगाव विजयस्तंभ का प्रतिकात्मक चित्र

अनुक्रमणिका

1	भीमा कोरेगांव षड़यंत्र: एक परिचय	1
2	भीमा कोरेगांव - एल्गार परिषद षड़यंत्र केस	3
3	राजकीय कैदी	
	3.1 महेश राऊत	15
	3.2 रोना विल्सन	19
	3.3 शोमा सेन	23
	3.4 सुधीर ढवले	27
	3.5 सुरेन्द्र गडलिंग	31
	3.6 अरुण फरेरा	35
	3.7 सुधा भारद्वाज	39
	3.8 वरवरा राव	43
	3.9 वर्नन गोंज़ाल्विस	47
	3.10 आनंद तेलतुंबड़े	51
	3.11 गौतम नवलखा	55
	3.12 हेनी बाबू	59
	3.13 रमेश गायचोर	63
	3.14 सागर गोरखे	67
	3.15 ज्योति जगताप	71
	3.16 फादर स्टैन स्वामी	75
4	जेल से पत्र	79
5	रिलायंस मज़दूरों की गिरफ्तारी	113
6	दलित युवाओं पर वार; यह कैसे शुरू हुआ	117
7	भीमा कोरेगांव कमीशन	119
8	महामारी, अदालतों और जेलों पर प्रहार करती है	120
9	यूएपीए कानून और भीमा कोरेगांव केस	123
10	आओ हाथ बढ़ाओ!	127

भीमा कोरेगांव षड़यंत्र: एक परिचय

२०१७

28 दिसम्बर 2017 वधु बुद्रुक में दलित प्रतिमा, गोविन्द गायकवाड़ के पुण्यस्थान को अपवित्र किया गया

31 दिसम्बर 2017 पुणे में एल्गार परिषद का आयोजन

2018

1 जनवरी 2018 भीमा कोरेगांव जाने वाले दलित बहुजनों पर भगवाधारियों द्वारा हमला

2 जनवरी 2018 मनोहर संभाजी भिड़े और मिलिंद एकबोटे के विरुद्ध हिंसा भड़काने के लिए पहली एफआईआर दर्ज हुयी

3 जनवरी 2018 भीमा कोरेगांव में हुयी हिंसा के विरुद्ध दलित समूहों द्वारा महाराष्ट्र बंद

8 जनवरी 2018 सुधीर ढवले और अन्य के विरुद्ध तुषार दामगुडे द्वारा विश्रामबाग में एफआईआर क्रमांक 4/2018 दर्ज की गयी

12 जनवरी 2018 सत्यनारायण कर्रेला, बाबू शंकर वान्गुरी, शंकरय्या गुंडे और रवि मारेम्पल्ली, रिलायंस एनर्जी और महाराष्ट्र एनर्जी एम्प्लोयी यूनियन (एमईईयू) के सदस्यों की गिरफ्तारी। नरसिम्हा जुम्पाला, रिलायंस एनर्जी के साथ ठेकेदार, रमेश गोंडियाला, तेलंगाना राज्यदर्जा के कार्यकर्ता, और कृष्णा गोस्का, आवास अधिकार कार्यकर्ता गिरफ्तार हुए। प्रभाकर माछा (एक स्कूल अध्यापक) गिरफ्तार होकर बाद में रिहा किये गए। 23 जनवरी 2018 को खुदकुशी से उनकी मौत हुयी

5 फरवरी 2018 सैदुलू सिंगापंगा की गिरफ्तारी

17 अप्रैल 2018 सुधीर ढवले, हर्षाली पोतदार, रमेश गायचोर, ज्योति जगताप, सागर गोरखे, रूपाली जाधव और धावला ढेंगले के घरों पर पुणे पुलिस द्वारा छापे। एफआईआर में नाम नहीं होने के बावजूद अधिवक्ता सुरेन्द्र गडलिंग और रोना विल्सन के घरों में भी छानबीन

6 जून 2018 सुधीर ढवले, रोना विल्सन, सुरेन्द्र गडलिंग, शोमा सेन और महेश राउत की गिरफ्तारी

28 अगस्त 2018 सुधा भारद्वाज, गौतम नवलखा, अरुण फरेरा, वर्नन गोंज़ाल्विस और वरवरा राव गिरफ्तार। सुज़न अब्राहम, आनंद तेलतुंबड़े, स्टैन स्वामी और क्रांति तेकुला, प्रोफेसर के सत्यनारायण और के वी कुर्मानाथ के घरों पर भी एक ही समय पर छापे

29 अगस्त 2018 5 प्रतिष्ठित शख्स (रोमिला थापर और अन्य) ने सुप्रीम कोर्ट में गिरफ्तारियों के विरुद्ध मुकदमा दर्ज किया। सुप्रीम कोर्ट का गोंज़ाल्विस, फरेरा, भारद्वाज, राव और नवलखा को 'घर में नज़रबंद' रखने का आदेश

29 दिसम्बर 2017 दक्षिणपंथी समूहों द्वारा बंद का आह्वान

27 अक्टूबर 2018 पुणे पुलिस द्वारा फरेरा, गोंज़ाल्विस और भारद्वाज को हिरासत में लिया गया; नवलखा और राव को दिल्ली और हैदराबाद के हाई कोर्टों द्वारा दण्डविराम मिला

17 नवम्बर 2018 पुणे पुलिस द्वारा वरवरा राव गिरफ्तार

28 सितम्बर 2018 सुप्रीम कोर्ट ने 2:1 के विभाजित फैसले से मुकदमा खारिज कर अन्य कानूनी उपाय ढूंढने के लिए 4 हफ्ते तक गिरफ्तारी से सुरक्षा बढ़ाई

15 नवम्बर 2018 जून की गिरफ्तारियों के विरुद्ध पहली चार्जशीट (5000+ पन्ने) दर्ज

17 दिसम्बर 2018 बॉम्बे हाई कोर्ट द्वारा कर्रेला, वान्गुरी, गुंडे और मारेम्पल्ली को ज़मानत (ज़मानत की सख्त शर्तों के कारण रिहाई में 2 से 6 माह लग गए)

2019

21 फरवरी 2019 दूसरी चार्जशीट (1837 पन्नों) दर्ज की गयी

3 फरवरी 2019 पुलिस द्वारा चार्जशीट दर्ज करने के लिए अतिरिक्त समय की मांग पर बॉम्बे हाई कोर्ट के नामंज़ूरी के आदेश को सुप्रीम कोर्ट द्वारा रद्द किया गया

10 सितम्बर 2019 दिल्ली विश्वविद्यालय के प्रोफेसर, हेनी बाबू के नोएडा स्थित घर पर छापा। स्टैन स्वामी के दफ्तर पर दूसरी बार छापा डाला गया

2020

16 मार्च 2020 सुप्रीम कोर्ट ने नवलखा और तेलतुंबड़े की गिरफ्तारी-पूर्व ज़मानत नामंज़ूर की

24 जनवरी 2020 गृह मंत्रालय ने राज्य सरकार से बिना सलाह-मशवरा के एनआईए (राष्ट्रीय जांच एजेंसी) को जांच सौप दी

28 जुलाई 2020 5 दिन की पूछताछ के बाद हेनी बाबू की गिरफ्तारी

14 अप्रैल 2020 दिल्ली और मुंबई में नवलखा और तेलतुंबड़े ने एनआईए (राष्ट्रीय जांच एजेंसी) के सामने समर्पण किया

8 सितम्बर 2020 ज्योति जगताप की गिरफ्तारी

7 सितम्बर 2020 पुणे में रमेश गायचोर और सागर गोरखे की गिरफ्तारी

9 अक्टूबर 2020 रांची में फादर स्टैन स्वामी की गिरफ्तारी, एनआईए (राष्ट्रीय जांच एजेंसी) द्वारा 10,000 से अधिक पन्नों की चार्जशीट दर्ज की गयी

2021

21 फरवरी 2021 स्वास्थ्य आधार पर वरवरा राव की ज़मानत की अर्ज़ी बॉम्बे हाई कोर्ट द्वारा 6 माह के लिए मंज़ूर

6 मार्च 2021 वरवरा राव की अस्पताल से ज़मानत पर छुट्टी

भीमा कोरेगांव - एल्गार परिषद षड़यंत्र केस

“कानून के दुरुपयोग की शुरुआत राजनैतिक गतिविधियों को आपराधिक गतिविधियों के समकक्ष बना देने से होती है। एक बार ऐसा होने के बाद, कानून हिंसा करने का बहाना बन जाता है। राजनैतिक विरोध के खत्म होते ही चिन्ताजनक तरीके से राजनैतिक विरोधियों के मानवाधिकार भी खत्म हो जाते हैं।” – के जी कन्नाबिरान

“कानून के दुरुपयोग की शुरुआत राजनैतिक गतिविधियों को आपराधिक गतिविधियों के समकक्ष बना देने से होती है। एक बार ऐसा होने के बाद, कानून हिंसा करने का बहाना बन जाता है। राजनैतिक विरोध के खत्म होते ही चिन्ताजनक तरीके से राजनैतिक विरोधियों के मानवाधिकार भी खत्म हो जाते हैं।” – के जी कन्नाबिरान

भीमा कोरेगांव एल्गार परिषद षड़यंत्र केस एक ज्वलंत उदाहरण है कि किस तरह राजनैतिक विरोध को दबाने के लिए क्रिमिनल लॉ का उपयोग किया गया है। आज, 16 विख्यात अकादमिक, बुद्धिजीवी, वकील, सांस्कृतिक कार्यकर्ता, लेखक, आदिवासी-अधिकारों के कार्यकर्ता इस षड़यंत्र केस के अंतर्गत जेल में हैं, जिनमें से 9 अब दो साल से ज़्यादा समय से बन्दी हैं।

भीमा कोरेगांव युद्ध

हर साल जनवरी की पहली तारीख को लाखों लोग, मुख्यतः दलित-बहुजन, महाराष्ट्र के पुणे शहर से 30 किलोमीटर दूर स्थित भीमा कोरेगांव पर इकट्ठे होते हैं, जहां एक 200 साल पुराना विजयस्तंभ स्थित है। यह स्तंभ 1818 ईस्वी में इस जगह पर 500 महार सैनिकों की एक ब्रिटिश टुकड़ी द्वारा 28 हज़ार संख्या वाली पेशवाई सेना पर हासिल की गयी जीत के उपलक्ष्य में बनवाया गया था। पेशवा राज्य में दलित-बहुजन का शोषण चरम पर था और जाति अत्याचार और भेदभाव बहुत सामान्य था। भारतीय संविधान के निर्माता बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर ने दलित-बहुजन समुदाय की अस्मिता के निर्माण में इस लड़ाई के महत्व पर 1927 में, अपने दौरे के दौरान प्रकाश डाला।

इस यादगार उत्सव के बारे में बेशक ही एक दूसरा मत भी है, जिसके मुख्य पक्षधर डॉ आनंद तेलतुंबड़े (गिरफ्तार व्यक्तियों में से एक) हैं। डॉ तेलतुंबड़े के मतानुसार “इस युद्ध को पेशवा के ब्राह्मणवादी शासन के विरुद्ध महारों के बदले की तरह देखना गलतफहमी पैदा करेगा” और ये कि दलितों ने “यह युद्ध सिर्फ अपने मालिकों (अंग्रेज़ों) के सैनिक होने के नाते लड़ा था।” जैसा भी मानें, भीमा कोरेगांव का विजयस्तंभ बहुत से दलित और बहुजन समुदायों के लिए हिम्मत और गर्व का प्रतीक है।

एल्गार परिषद

सन 2018 में भीमा कोरेगांव युद्ध की 200वीं वर्षगांठ मनाने के लिए, 200 से अधिक दलित, बहुजन, अम्बेडकरवादी और दूसरे संगठन, भीमा कोरेगांव शौर्य दिवस प्रेरणा अभियान के बैनर तले जमा हुए, जिसके संयोजक सुप्रीम कोर्ट के पूर्व न्यायाधीश जज पी बी सावंत और बॉम्बे हाई कोर्ट के पूर्व न्यायाधीश जज कोलसे पाटिल थे। इस गठबंधन ने 31 दिसम्बर 2017 को पुणे के शनिवारवाडा (जो कि पेशवा सत्ता का गढ़ रहा है) में एल्गार परिषद नामक सफल कार्यक्रम का आयोजन किया जिसमें भारी संख्या में लोगों ने भाग लिया। कथित तौर पर इस कार्यक्रम में दस हज़ार तक की संख्या में लोग जमा हुए, जिनमें से कई ग्रामीण महाराष्ट्र से संगठित पद यात्राएं करके आये थे।

आयोजकों के अनुसार इस कार्यक्रम का उद्देश्य एक नवी पेशवाई का पर्दाफाश करना था – एक ऐसा दौर जिसमें आंदोलनों का दमन, अल्पसंख्यकों को अलग-थलग करना, जात-पात के नाम पर बढ़ते अत्याचार, गरीब-विरोधी विकास की नीतियां, और

भारतीय संविधान के निर्माता बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर ने दलित-बहुजन समुदाय की अस्मिता के निर्माण में इस लड़ाई के महत्व पर 1927 में, अपने दौरे के दौरान प्रकाश डाला

महाराष्ट्र पुलिस ने राज्यव्यापी अभियान चलाकर 622 एफआईआर के तहत लगभाग 3000 दलित युवाओं को गिरफ्तार कर लिया जिन पर दंगाई होने का आरोप लगाया गया।

ऐसे और बहुत सारे बढ़ते दमन शामिल हैं। समारोह के मुख्य वक्ताओं में महाराष्ट्र से भरिपा बहुजन महासंघ के नेता वकील प्रकाश अम्बेडकर, जाति विरोधी कार्यकर्ता राधिका वेमुला, युवा नेता उमर ख़ालिद, गुजरात से निर्दलीय विधायक जिग्नेश मेवानी, छत्तीसगढ़ से आदिवासी कार्यकर्ता सोनी सोरी, ग्रामीण कार्यकर्ता उल्का महाजन और अन्य लोग शामिल थे। कार्यक्रम में यह साफ तरह से व्यक्त किया गया कि हिन्दुत्व ब्रिगेड – आरएसएस और भाजपा का गठबंधन ही यह नई पेशवाई है, जो कि हाशियाकृत समुदायों में फूट डालने की कोशिश कर रहे हैं, और सभी उपस्थित जनों ने यह प्रतिज्ञा की कि वह संविधान के मूल्यों को कायम रखेंगे और हिन्दुत्व राजनीति का खंडन करेंगे।

भीमा कोरेगांव में हिंसा

एल्गार परिषद के एक दिन बाद, 1 जनवरी 2018 को भीमा कोरेगांव समारोह में हिस्सा ले रहे दलित-बहुजनों पर भगवा झंडा लिए हुए दक्षिणपंथी हिन्दुत्व गुंडों द्वारा हमला किया गया। हमले और उसके दौरान हुई हिंसा में दुकानें लूटी गईं, गाड़ियों को तोड़ा गया और एक व्यक्ति की मौत हुई। ऐसा माना गया है कि यह हमला भीमा कोरेगांव जा रहे दलित-बहुजनों पर भाजपा व आरएसएस जैसे हिंदुत्ववादी पार्टी और संगठनों ने करवाया था। इस समय महाराष्ट्र में भाजपा की सरकार थी। पूरे महाराष्ट्र में इस हमले के विरोध में भारी प्रदर्शन फूट पड़े और उसके बाद वकील प्रकाश अम्बेडकर और दूसरे

दलित नेताओं ने 3 जनवरी को राज्यव्यापी बंद की घोषणा कर दी। राज्य भर के दलित, मराठा और मुस्लिम समुदायों के भारी समर्थन से बंद बेहद सफल रहा। बंद के बाद, महाराष्ट्र पुलिस ने राज्यव्यापी अभियान चलाकर 622 एफआईआर के तहत लगभाग 3000 दलित युवाओं को गिरफ्तार कर लिया जिन पर दंगाई होने का आरोप लगाया गया।

एफआईआर

2 जनवरी 2018 को अनीता साल्वे, एक दलित कार्यकर्ता और 1 जनवरी की हिंसा की चश्मदीद गवाह ने एक एफआईआर दर्ज की। एफआईआर में आरोप था कि एक हथियारबंद भीड़ ने दलितों पर हमला किया। एफआईआर में हमले के षड़यंत्रकारी के तौर पर संभाजी भिड़े और मिलिंद एकबोटे को नामित किया गया जो कि क्रमशः शिव प्रतिष्ठान हिन्दुस्तान और हिन्दू एकता अघाड़ी नामक दक्षिणपंथी हिन्दुत्व संगठनों के अगुआ हैं।

8 जनवरी 2018 को एक और एफआईआर पुणे के एक छोटे कंस्ट्रक्शन व्यापारी तुषार दामगुडे ने लिखवाई। तुषार दामगुडे, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ (आरएसएस) के करीबी जाने जाते हैं और अपने ब्लॉग पर वामपंथ विरोधी पोस्ट लिखने में काफी वक्त बिताते हुए प्रतीत होते हैं। अपनी एफआईआर में दामगुडे ने आरोप लगाया कि 31 दिसम्बर 2017 को एल्गार परिषद में सामाजिक कार्यकर्ताओं द्वारा दिए गए भाषण के कारण 1 जनवरी को भीमा कोरेगांव में हुई हिंसा भड़की। इसी एफआईआर की आड़ में मानवाधिकार कार्यकर्ताओं, छात्रों और कर्मियों पर एक दमन चक्र की शुरुआत हुई।

भीमा कोरेगांव स्मारक पर हुई हिंसा के लगभग 2 हफ्ते बाद, 12 जनवरी 2018 को इस सम्बन्ध में पहली गिरफ्तारियां हुईं। महाराष्ट्र पुलिस के आतंकवाद विरोधी दस्ते (एटीएस) ने रिलायंस इंडस्ट्रीज़ के चार कर्मचारियों, कंपनी के एक ठेकेदार और थाणे में रहने वाले कंपनी के एक अनियमित कर्मचारी के घर पर छापामारी की। इसके एक दिन पहले कल्याण से एक सामाजिक कार्यकर्ता को गिरफ्तार किया गया था। 12 जनवरी को सेवानिवृत अध्यापक प्रभाकर माछा को गिरफ्तार किया गया और बाद में छोड़ दिया गया। 23 जनवरी को माछा ने आत्महत्या कर ली; उनकी आत्महत्या के कारणों का अभी तक कोई पता नहीं है। गिरफ्तार किये गए सभी लोग आंध्र प्रदेश और तेलंगाना से आने वाले प्रवासी मज़दूर थे जिन पर क्रूर कानून, गैर-कानूनी गतिविधियां (रोकथाम) अधिनियम (यूएपीए) लगाया गया। 5 फरवरी को एटीएस ने रिलायंस के एक और कर्मचारी को कंपनी परिसर से उस समय गिरफ्तार किया जब वो काम पर पहुंचे। रिलायंस एनर्जी के ये 5 कर्मचारी – सत्यनारायण कर्रेला, बाबू शंकर वान्गुरी, शंकरय्या गुंडे, रवि मारेम्पल्ली, सैदुलू सिंगापंगा – लगभग दो दशकों से कंपनी में काम कर रहे थे और महाराष्ट्र एनर्जी एम्प्लोयी यूनियन (एमईईयू) में सक्रिय थे। इन लोगों पर एल्गार परिषद में "शामिल होने" का आरोप लगाया गया। ध्यान देने की बात है कि इन गिरफ्तारियों से पहले बहुराष्ट्रीय कंपनी अडानी ट्रांसमिशन लिमिटेड ने दिसम्बर 2017 में रिलायंस एनर्जी को ले लिया था।

हालांकि पुलिस ने मीडिया के सामने ये दावा किया कि इन 8 लोगों को भीमा कोरेगांव में हुई हिंसा के सम्बन्ध में हिरासत में लिया गया है, लेकिन बाद में दाखिल आरोपपत्र में

महाराष्ट्र पोलिसांच्या दहशतवादविरोधी पथकाने रिलायन्स उद्योगातील चार कामगार, त्याच कंपनीतील कंत्राटदार व ठाण्यातील एका कंत्राटी कामगारांच्या घरावर छापे टाकले.

ऐसा कोई आरोप इनके खिलाफ बनाया नहीं गया था। आरोपपत्र में 'भीमा कोरेगांव' शब्द का इस्तेमाल सिर्फ इस सन्दर्भ में हुआ है कि इन लोगों के घरों से भीमा कोरेगांव कार्यक्रम के पोस्टर बरामद किये गए, जो कि उन पर लगाए गए अनेक आरोपों में से एक आरोप है।

भीमा कोरेगांव की गिरफ्तारियां

साल्वे द्वारा दर्ज की गई पहली एफआईआर की जांच पुलिस ने कभी भी गंभीरता से नहीं की। लेकिन सिविल सोसाइटी द्वारा की गईं अनेक फैक्ट फाइंडिंग, जिनमें से एक तो पुणे के डिप्टी मेयर, सिद्धार्थ ढेण्डे ने ही की थी, से यह निष्कर्ष निकला कि हिंसा पहले से ही योजनाबद्ध और भगवा झंडा लहराते 'बाहरी' लोगों द्वारा उकसाई गयी थी, जो मिलिंद एकबोटे और संभाजी भिड़े के समूहों के लोग थे। आखिरकार, सुप्रीम कोर्ट ने मिलिंद एकबोटे की अग्रिम ज़मानत का आवेदन खारिज किया और उनकी गिरफ्तारी के लिए आर्डर पेश किए। 14 मार्च 2018 को मिलिंद एकबोटे को गिरफ्तार किया गया। लेकिन एक महीने में ही उन्हें ज़मानत पर रिहा कर दिया गया। संभाजी भिड़े को हिरासत में कभी नहीं लिया गया।

तुषार दामगुडे की एफआईआर को पुलिस ने बहुत गंभीरता से लिया। दो हफ्तों के भीतर जांच पुणे के एसीपी के पास ट्रांसफर हुई और मार्च में आपराधिक षड़यंत्र से जुड़े आरोप भी जोड़ दिए गए। 17 अप्रैल की सुबह, बिना किसी सर्च वारंट के, पुणे पुलिस ने सुधीर ढवले – वरिष्ठ दलित कार्यकर्ता और मराठी भाषा की प्रगतिशील पत्रिका विरोधी के संपादक, सामाजिक कार्यकर्ता और युवा नेत्रि हर्षाली पोतदार और कबीर कला मंच के सामाजिक कार्यकर्ता सागर गोरखे, धावला ढेंगले, रमेश गायचोर, ज्योति जगताप और रूपाली जाधव (सभी भीमा कोरेगांव शौर्य दिन प्रेरणा अभियान के आयोजकों में से हैं) के घरों पर छापे मारे। इसके साथ ही नागपुर में रहने वाले आपराधिक मामलों के वरिष्ठ वकील, सुरेन्द्र गडलिंग और दिल्ली के मानवाधिकार कार्यकर्ता रोना विल्सन के घरों पर भी छापे मारे गए। हालांकि दामगुडे की एफआईआर में इन दोनों के नाम शुरू में मौजूद नहीं थे, और ना दोनों एल्गार परिषद या भीमा कोरेगांव के इस समारोह में मौजूद थे। इनके नाम जांच में 6 मार्च को जोड़े गए थे। छापों के दौरान, उनके सभी कम्प्यूटरों की हार्डडिस्क, पेन ड्राइव, और मोबाइल फोन (गडलिंग के बेटे और भतीजी के फोन भी) बिना किसी वारंट के और बिना उपयुक्त इलेक्ट्रॉनिक तरीके से सील किये हुए ज़ब्त कर लिए गए।

भीमा कोरेगाव षड्यंत्र में बंदी राजकीय कैदी

"हमारे हाल फिलहाल के फैसले इस बात पर ज़ोर देते हैं कि व्यक्तिगत गरिमा जनतांत्रिक व्यवस्था के लिए मूलभूत है। लेकिन कानूनी फैसलों में लिखी गयी ये बड़ी-बड़ी बातें एक आम नागरिक के लिए तब तक कोई मायने नहीं रखतीं जब तक मानवीय स्वतंत्रता की ये संवैधानिक तलाश उन व्यक्तियों को न्याय दिलाने में सफल नहीं होती जिसकी स्वतंत्रता खास मसलों में खतरे में है।"

जबकि शुरूआती एफआईआर में भारतीय दंड संहिता की धारायें 153(A), 505 (1) (b), 117 और 34 लगायी गयी थीं, बाद में, किसी भी आरोपी को जानकारी दिए बिना इसमें गैर-कानूनी गतिविधियां (रोकथाम) अधिनियम (यूएपीए) भी जोड़ दिया गया।

अप्रैल के छापों के लगभग दो महीने बाद, 6 जून की सुबह, पुणे पुलिस ने इनमें से 3 लोगों को गिरफ्तार कर लिया। सुधीर ढवले को मुंबई, सुरेन्द्र गडलिंग को नागपुर और रोना विल्सन को दिल्ली से हिरासत में लिया गया। इसके अलावा नागपुर से 2 और लोगों को गिरफ्तार किया गया जिनके घरों पर 17 अप्रैल को छापे नहीं पड़े थे – वरिष्ठ अकादमिक और नागपुर यूनिवर्सिटी की प्रोफेसर शोमा सेन, और भारत जन आंदोलन से जुड़े विस्थापन विरोधी कार्यकर्ता और प्रधान मंत्री ग्रामीण विकास अध्येता (पीएमडीआरएफ) रहे महेश राउत।

तीन महीने बाद, भीमा कोरेगांव पर हुई हिंसा से तथाकथित 'सम्बन्ध' को लेकर गिरफ्तारियों का एक और दौर शुरू हुआ। 28 अगस्त 2018 को पुणे पुलिस ने मानवाधिकार वकील सुधा भारद्वाज को उनके फरीदाबाद निवास से सुबह 7 बजे हिरासत में लिया। इसी समय, पुणे पुलिस ने देश भर के अनेक शहरों जैसे मुंबई, दिल्ली, रांची, गोवा और हैदराबाद में रहने वाले प्रमुख सामाजिक कार्यकर्ताओं, वकीलों और लेखकों के घरों पर भी छापे मारे। सामाजिक कार्यकर्ता वर्नन गोंज़ाल्विस और वकील अरुण फरेरा को उनके घरों से क्रमशः मुंबई और थाणे से

गिरफ्तार किया गया। तेलुगू भाषा के प्रख्यात कवि और सामाजिक कार्यकर्ता वरवरा राव को हैदराबाद से गिरफ्तार किया गया।

पत्रकार और लेखक, गौतम नवलखा को भी नई दिल्ली में उनके घर से गिरफ्तार किया गया, लेकिन दिल्ली हाई कोर्ट ने उसी दोपहर उनकी गिरफ्तारी पर स्टे लगाकर, उन्हें घर में नज़रबन्द रखने के आदेश में तब्दील कर दिया। इनके घरों में मिले सभी इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों के साथ-साथ नोटबुकें, कागज़ात, डायरियां और किताबें भी पुणे पुलिस ने ज़ब्त कर लीं। इसके अलावा, गोवा निवासी अकादमिक आनंद तेलतुंबड़े के घर पर भी पुणे पुलिस ने छापा मारा, लेकिन क्योंकि वो बाहर यात्रा पर थे, उन्हें गिरफ्तार नहीं कर सके। झारखंड निवासी जेसुइट पादरी और सामाजिक कार्यकर्ता स्टैन स्वामी और साथ-साथ हैदराबाद में प्रोफेसर के सत्यनारायण, पत्रकार क्रांति तेकुला और के वी कुर्मानाथ के घरों पर भी छापे मारे गए।

सुप्रीम कोर्ट में हस्तक्षेप

सरकार द्वारा मानवाधिकार कार्यकर्ताओं की लगातार गिरफ्तारी से चिन्तित होकर, 29 अगस्त को 5 गणमान्य नागरिकों – इतिहासकार रोमिला थापर, अर्थशास्त्री देविका जैन और प्रभात पटनायक, अकादमिक सतीश देशपांडे और माजा दारुवाला – ने भारत के सुप्रीम कोर्ट में एक त्वरित जनहित याचिका दायर की। याचिका का उद्देश्य था – "व्यापक जनहित को आगे बढ़ाना और निष्कपट मतभेद के दमन को रोकना ताकि जनतंत्र और जनतांत्रिक मूल्यों की रक्षा हो सके।" याचिका में कोर्ट से प्रार्थना की गयी थी कि 1 जनवरी को जुलूस में शामिल लोगों पर हुए हमले व आगजनी और उसके बाद मानवाधिकार कार्यकर्ताओं पर 'माओवादी षड़यंत्र' के नाम पर दायर मुकदमे की जांच करने के लिए एक विशेष जांच दल (एसआईटी) नियुक्त किया जाए। इस मामले के महीने भर की सुनवाई में, सुप्रीम कोर्ट ने अगस्त में गिरफ्तार लोगों के लिए 'घर में नज़रबन्द' करने का एक अभूतपूर्व निर्णय लिया। हालांकि सुप्रीम कोर्ट ने ये माना कि "विरोध प्रकट करना जनतंत्र का सुरक्षा वाल्व है" और ये भी कि "विरोध करने का मौका नहीं दिए जाने से, जनतंत्र का प्रेशर वाल्व फट जाएगा।" लेकिन 28 सितम्बर 2018 को बहुमत से लिए गए फैसले में उन्होंने एसआईटी की मांग को खारिज कर दिया। अपने असहमति के फैसले में जस्टिस डी वाई चंद्रचूड़ ने कानून के अनेक पहलुओं की बारीकी से विवेचना की और मामले की मूल बात तक पहुंचे। उन्होंने इस मुकदमे की असाधारण परिस्थितियों को भी पहचाना। उन्होंने लिखा "हमारे हाल फिलहाल के फैसले इस बात पर ज़ोर देते हैं कि व्यक्तिगत गरिमा जनतांत्रिक व्यवस्था के लिए मूलभूत है। लेकिन कानूनी फैसलों में लिखी गयी ये बड़ी-बड़ी बातें एक आम नागरिक के लिए तब तक कोई मायने नहीं रखतीं जब तक मानवीय स्वतंत्रता की ये संवैधानिक तलाश उन व्यक्तियों को न्याय दिलाने में सफल नहीं होती जिसकी स्वतंत्रता खास मसलों में खतरे में है।"

पुणे के ट्रायल कोर्ट में ज़मानत खारिज होने के बाद, गोंज़ाल्विस और फरेरा को 26 अक्टूबर 2018 को पुलिस हिरासत में ले लिया गया और सुधा भारद्वाज को उनके घर से 27 अक्टूबर को गिरफ्तार किया गया। वरवरा राव की गिरफ्तारी 17 नवम्बर को हुई।

आगे और गिरफ्तारियां

आनंद तेलतुंबड़े और गौतम नवलखा, दोनों ने बॉम्बे हाई कोर्ट में, और उसके बाद सुप्रीम कोर्ट में आवेदन लगाया था कि उनके खिलाफ एफआईआर का खात्मा किया जाये। हालांकि दोनों कोर्टों ने उनकी दरख्वास्त खारिज कर दी, उनकी गिरफ्तारी से सुरक्षा को जारी रखा गया। आखिरकार, 16 मार्च 2020 को उनकी अग्रिम ज़मानत के आवेदन भी सुप्रीम कोर्ट में खारिज होने के बाद, दोनों को आत्मसमर्पण

भीमा कोरेगाव विजयस्तंभ को अभिवादन करणे जमा लोग

करने के लिए तीन हफ्ते दिये गए। इसी दौरान, कोरोना वायरस महामारी देश में फैल चुकी थी और राष्ट्रीय लॉकडाउन घोषित था। दोनों की बढ़ी उम्र (आनंद तेलतुंबड़े 70 वर्ष के हैं और गौतम नवलखा 67 वर्षीय हैं) और कई स्वास्थ्य मुश्किलों के बावजूद, जिससे उनको कोरोना वायरस होने की ज़्यादा सम्भावना बनती है, सुप्रीम कोर्ट ने उन्हें और राहत देने से इन्कार किया, और 14 अप्रैल 2020 को उन्होंने नई दिल्ली और मुंबई के एनआईए के दफ्तरों में आत्मसमर्पण किया।

छापे और गिरफ्तारियों की यह कथा यहां खत्म नहीं होती। 12 जुलाई 2020 को, भीमा कोरेगांव में हुई हिंसा के ढाई साल बाद, दिल्ली विश्वविद्यालय के प्रोफेसर हेनी बाबू को, और अन्य लोगों के साथ, इस मामले में गवाही के लिए एनआईए द्वारा सम्मन भेजा गया। 19 सितम्बर 2019 को पुणे पुलिस द्वारा उनके घर में पहले ही छानबीन हो चुकी थी। लॉकडाउन में यात्राओं की मुश्किलों के चलते उनकी वीडियो-कॉन्फ्रेंस के लिए दी गई दरख्वास्त को नामंज़ूर करते हुए, एनआईए ने उन्हें व्यक्तिगत रूप से उपस्थित होने की ज़िद की। 28 जुलाई को, पांच दिन की पूछताछ के बाद एनआईए ने उनकी गिरफ्तारी घोषित की; इससे इस मामले में 12वीं गिरफ्तारी हुई। हेनी बाबू की पत्नी ने प्रेस को सूचना दी कि हेनी बाबू पर और लोगों के खिलाफ झूठे, दोषी ठहराने वाले बयान देने का दबाव लगाया जा रहा था और ऐसा करने से मना कर देने के कारण उनको गिरफ्तार किया गया। कबीर कला मंच के तीन सांस्कृतिक कार्यकर्ताओं – सागर गोरखे, रमेश गायचोर, ज्योति जगताप को 7 और 8 सितम्बर, 2020 को गिरफ्तार किया गया। एल्गार परिषद की आयोजन समिति में वे शामिल थे और उनके नाम दमगुडे की एफआईआर में भी नामित थे। 2018 में ही पुणे पुलिस ने उनके घरों पे छापा मारा था और सभी इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों को ज़ब्त कर फॉरेंसिक एनालिसिस के लिए भेज दिया था। लेकिन एनआईए जब इस जांच का संचालन करने लगी, भीमा कोरेगांव घटना के दो साल बाद उनको फिर से पूछताछ के लिए बुलाया गया। अपनी गिरफ्तारी के ठीक पहले रिलीज़ किए गए एक वीडियो बयान में सागर गोरखे और रमेश गायचोर ने दर्शकों को बताया कि उन पर ये कुबूल करने का दबाव था कि एल्गार परिषद की घटना एक माओवादी घटना थी और उन्हें बताया गया था कि अगर वे ये कुबूल करते हुए बयान मजिस्ट्रेट के सामने हस्ताक्षर करके जमा कर

देंगे तो उन्हें रिहा कर दिया जाएगा। लेकिन, तीनों कलाकार झूठे बयान देने की जगह, गिरफ्तारी का सामना करने को तैयार थे।

कोविड के समय में भी एनआईए इस केस के संदर्भ में और लोगों से पूछताछ कर रही थी – ऐसा माना जाता है कि जुलाई, अगस्त और सितम्बर के तीन महीनों में एनआईए ने देश भर से 40 से ज़्यादा लेखकों, कार्यकर्ताओं और पत्रकारों को पूछताछ के लिए बुलाया है, जिनमें गिरफ्तार लोगों के परिवारजन भी शामिल थे। रांची में 83 वर्षीय फादर स्टैन के साथ भी इसी प्रकार जुलाई और अगस्त में बार–बार पूछताछ की गयी और फिर मुंबई के एनआईए दफ्तर में पूछताछ के लिए पेश होने के लिए कहा गया। उम्र और कोविड के लिहाज़ से मुंबई जाने से मना करने पर, 9 अक्टूबर को उन्हें रांची से गिरफ्तार कर मुंबई भेजा गया।

मीडिया ट्रायल और कोई सबूत नहीं होना

पुलिस ने मुख्यधारा दक्षिणपंथी मीडिया के सहयोग से बहुत उत्सुकता के साथ इस मुद्दे पर मीडिया ट्रायल चलाने का भरपूर काम किया है। दो प्रमुख चैनलों – द रिपब्लिक और ज़ी टीवी – ने कुछ ऐसे खत मिलने का दावा किया जो कि कथित तौर पर गिरफ्तार व्यक्तियों और भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (माओवादी), एक प्रतिबन्धित संगठन के सम्बन्धों को उजागर करते हैं। चैनलों ने एक ऐसा खत मिलने का भी दावा किया जिसमें "मोदी राज" को खत्म करने के लिए "राजीव गांधी" के तरीके से हत्या के षड़यंत्र के संकेत मिलते हैं। 7 जून 2018 को पुणे पुलिस के संयुक्त कमिश्नर रविंद्र कदम ने एक प्रेस वार्ता की, जहां बहुत ही विचित्र तरह से यह बात जनता के सामने रखी कि "हत्या के षड़यंत्र" के संकेत देने वाला खत 17 अप्रैल के छापों के दौरान मिला था और इसके एक महीने बाद गिरफ्तार लोगों पर यूएपीए से जुड़े आरोप जोड़े गए। यह आश्चर्यजनक है कि इस कथित गंभीर खतरे के बावजूद, प्रधान मंत्री की सुरक्षा की समीक्षा के लिए पहली बैठक 11 जून को हुई, यह जानकारी आने के लगभग दो महीने बाद। इस देरी से ऐसे धमकी भरे खत की असलियत पर सवालिया निशान खड़े होते हैं। बाद में ऐसे कुछ और "खत" अतिरिक्त महाप्रबंधक (न्याय और व्यवस्था) द्वारा 31 अगस्त 2018 को एक प्रेस वार्ता में मीडिया को दिए गए। अंततः ऐसे कुल 13 "खत" जिनकी बुनियाद पर ये पूरा केस टिका हुआ है, पुलिस ने कोर्ट में जमा करने से पहले मीडिया को लीक किये। मीडिया ट्रायल चलाने की ये सोची-समझी कोशिश जांच एजेंसी की विश्वसनीयता पर प्रश्नचिह्न लगाती है। जस्टिस चंद्रचूड़ ने अपने असहमित के निर्णय में कानून और प्रक्रिया की इस तरह धज्जियां उड़ाने के लिए, जांच एजेंसियों की फटकार लगायी और साथ ही ये भी माना कि इन खतों की प्रमाणिकता संदिग्ध है।

अंततः ऐसे कुल 13 "खत" जिनकी बुनियाद पर ये पूरा केस टिका हुआ है, पुलिस ने कोर्ट में जमा करने से पहले मीडिया को लीक किये। मीडिया ट्रायल चलाने की ये सोची-समझी कोशिश जांच एजेंसी की विश्वसनीयता पर प्रश्नचिह्न लगाती है। जस्टिस चंद्रचूड़ ने अपने असहमित के निर्णय में कानून और प्रक्रिया की इस तरह धज्जियां उड़ाने के लिए, जांच एजेंसियों की फटकार लगायी और साथ ही ये भी माना कि इन खतों की प्रमाणिकता संदिग्ध है।

आरोप पत्र और सबूत

पुणे पुलिस ने दिसम्बर 2018 में पहला आरोपपत्र जून में गिरफ्तार किए व्यक्तियों के खिलाफ दायर किया गया। 5000 पन्नों के लम्बे-चौड़े आरोपपत्र में न सिर्फ अभियुक्तों पर लगाए गए आरोप अस्पष्ट हैं बल्कि पेश किये गए सबूत आरोपियों के भीमा कोरेगांव हिंसा से सम्बन्ध को साबित करने में नाकाम रहे। 21 फरवरी 2019 को पुणे पुलिस ने, 28 अगस्त को हिरासत में लिए गए अभियुक्तों के खिलाफ, एक अतिरिक्त आरोपपत्र दायर किया। ये आरोपपत्र भी आरोपियों की एफआईआर में दर्ज अपराधों में शामिल होने पर कोई जानकारी नहीं प्रस्तुत करता है।

आरोपपत्र के लम्बे-चौड़े पन्नों के बावजूद, वे 16 आरोपियों के खिलाफ सबूत का कोई ज़िक्र नहीं करते हैं। आरोपियों के खिलाफ इकट्ठा किया गया कथित सबूत अभी भी टाइप किए हुए, प्रिंटेड "खतों" के रूप में है जिनको 31 अगस्त 2018 की ब्रीफिंग मीटिंग के दौरान प्रेस को "लीक" किया गया था। पुलिस की कहानी के अनुसार एल्गार परिषद का आयोजन ही दलितों को 1 जनवरी 2018 की हिंसा के लिए भड़काने के लिए ज़िम्मेदार है, और साथ ही कि ये आयोजन भारत में निर्वाचित सरकार को गिराने के लिए माओवादियों द्वारा रचित बड़ी साजिश का हिस्सा है।

ये षड़यंत्र मत पूरी तरह से ऐसे कागज़ातों पर आधारित है जो मुख्य रूप से दो आरोपियों के कम्प्यूटर से बरामद किए गए हैं, जो बिना किसी हस्ताक्षर के हैं, अस्थापित, अप्रमाणित, टाइप किए गए खत हैं। इनमें से कई बिना तारीख के, एक अज्ञात व्यक्ति से दूसरे अज्ञात व्यक्ति के बीच लिखे गए हैं। ये खत मूल रूप में उस कम्प्यूटर पर भी नहीं लिखे गए थे जिधर से अभियोजन पक्ष ने उन्हें बरामद करने का दावा किया है।

इस तरह से, ये खत किसी भी मुकदमे में सबूत के तौर पर जमा नहीं किए जा सकते हैं, न ही प्रदर्शनीय दस्तावेज़ की तरह दिखाए जा सकते हैं। लेकिन, यूएपीए के तहत गिरफ्तार लोगों की जमानत आवेदन को बार-बार खारिज करने के लिए ये काफी हैं।

अभियोग पक्ष द्वारा प्रदान की गयी रोना विल्सन के कंप्यूटर की क्लोन कॉपी पर 'द कारवां' पत्रिका द्वारा किये गये प्रारंभिक फॉरेंसिक विश्लेषण में कंप्यूटर पर कोई एक मालवेयर पाया गया। इस मालवेयर के माध्यम से इस कंप्यूटर पर किसी और जगह से दस्तावेज़ रखे जा सकते हैं। फरवरी 2021 में, अमरीका स्थित एक साइबर-फॉरेंसिक फर्म, आर्सेनल कंसल्टिंग, ने रोना विल्सन के कंप्यूटर की हार्ड ड्राइव और पेन ड्राइव की क्लोन कॉपी में मिली दस दोषपूर्ण फाइलों पर अपनी जांच की एक विस्तृत रपट प्रकाशित की। द वाशिंगटन पोस्ट में सबसे पहले छपी उनकी रपट ने पक्केपन से यह साबित कर दिया कि हार्ड ड्राइव पर 'नेटवायर' नाम का मालवेयर पाया गया है, और कैसे यह मालवेयर उनके कंप्यूटर पर स्थापित किया गया, और अगले 22 महीनों के दौरान लगातार उपयोग करके रोना विल्सन के उपकरणों पर ये दस फाइलें कहीं दूर से उनके कंप्यूटर में जमाई गयीं।

आर्सेनल कंसल्टिंग के अनुसार, रोना विल्सन को वरवरा राव के ईमेल पते का इस्तमाल करने वाले किसी व्यक्ति से 13 जून 2016 को एक ईमेल प्राप्त हुआ। इसमें एक कंप्रेस्ड फाइल थी। ईमेल पर हुए वार्तालाप में ईमेल भेजनेवाला रोना विल्सन को बार-बार अटैचमेंट डाउनलोड करके खोलने के लिए प्रेरित करता रहा, और उन्होंने यह आखिरकार किया। इस फाइल को खोलते हुए ही रोना विल्सन के कंप्यूटर पर नेटवायर मालवेयर स्थापित होने लगा, जिसके चलते कंप्यूटर का कमांड किसी और बुरा चाहने वाले रिमोट सर्वर के हाथ में भी चला गया। अगले दो साल तक, जब तक भीमा कोरेगांव केस में पुणे पुलिस द्वारा कंप्यूटर ज़ब्त नहीं किया

गया, तब तक नेटवायर मालवेयर दो उद्देश्यों के लिए इस्तेमाल होता रहा, निगरानी और दस्तावेज़ डिलीवरी। नेटवायर के माध्यम से रोना विल्सन के कंप्यूटर पर की गयी हर गतिविधि की निगरानी होती रही – कौन-सी वेबसाइट पर वो गए, उनके पासवर्ड, लिखे गए ईमेल, जो भी फाइलों पर काम किया, इत्यादि। इसके साथ ही, रोना विल्सन के कंप्यूटर पर दोषपूर्ण फाइलों को पहुंचाने के लिए भी नेटवायर का उपयोग किया गया।

आर्सेनल कंसल्टिंग ने ऐसी 50 फाइलों को पहचाना, जिसमें ये 10 फंसाने वाली फाइलें भी शामिल हैं, जिनके आधार पर यह रपट लिखी गयी। ये सभी फाइलें रोना विल्सन के कंप्यूटर पर एक छुपे हुए फोल्डर में चालाकी से पहुंचायी गयी थीं। रपट में यह साफ-साफ बताया गया है कि न ही ये दस्तावेज़ रोना विल्सन के कंप्यूटर पर तैयार किए गए थे, न ही कभी उनको खोला गया या देखा गया या कोई भी 'वैधानिक तरीके से उनके साथ काम किया गया'। साथ ही, नेटवायर के माध्यम से ये फाइलें पहले हार्ड ड्राइव पर कॉपी की गयीं, और फिर जब भी रोना विल्सन एक विशेष पेनड्राइव कंप्यूटर पर लगाते तब वहां ट्रान्सफर की जातीं। इस तरह, इस विश्लेषण के लिए देखी जा रहीं 10 में से 9 फाइलें आखिरकार पेन ड्राइव पर ट्रान्सफर की गयीं और हार्ड ड्राइव से हटा दी गयीं। रपट का मानना है कि, "आर्सेनल ने अभी तक सबूतों के साथ खिलवाड़ के जितने गंभीर मसलों में काम किया है यह उनमें से एक है..."

आर्सेनल कंसल्टिंग की यह रपट बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि रोना विल्सन के कंप्यूटर पर मालवेयर द्वारा किया गया हमला वैसा ही है जो भारत में और अन्य मानव अधिकार कार्यकर्ताओं के विरुद्ध इस्तेमाल किया गया है। जून 2020 में, एमनेस्टी इंटरनेशनल ने उल्लेखित किया था कि भीमा कोरेगांव मसले में आरोपी ठहराए गए लोगों के वकीलों को अनजान साइबर अटैकर से शंकाप्रद ईमेल मिल रहे हैं, और इनमें भी नेटवायर मालवेयर के अटैचमेंट थे। आर्सेनल कंसल्टिंग की रपट से साफ हो जाता है कि ये हमले जुड़े हुए हैं और एक ही मालवेयर ढांचे से उभर रहे हैं। साथ ही, यह भी मालूम हुआ था कि कुछ गिरफ्तार कार्यकर्ता और उनके नज़दीकी लोग पेगासस स्पाईवेयर के शिकार भी हुए हैं। यह व्हाट्सअप के माध्यम से उनके फोन तक पहुंचाया गया था, संभवतः भारत सरकार द्वारा। अतः, काफी स्पष्ट है कि सरकारी संस्थाएं काफी वक़्त से मालवेयर का इस्तेमाल कर इन कार्यकर्ताओं पर जासूसी कर रही थीं, और यह तथाकथित 'सबूत' जिसको आधार बनाकर उनको कैद किया गया है, वो उनके उपकरणों पर दुष्ट भाव से स्थापित किया गया था।

राष्ट्रीय सुरक्षा जांच एजेंसी (एनआईए) द्वारा जांच का लिया जाना

अक्टूबर 2019 में विधान सभा चुनाव के बाद महाराष्ट्र में भाजपा सरकार गिरने के साथ भीमा कोरेगांव मामलों को वापस देखे जाने की मांग शुरू हुई। गठबंधन से बनी नयी सरकार ने हिंसा से जुड़ी सैकड़ों एफआईआर वापस लेने का वादा किया, और साथ ही एक्टिविस्टों के विरुद्ध पुणे पुलिस द्वारा जांच के तरीकों पर सवाल उठाना शुरू किया। इस केस को अन्य मामलों से अलग रखते हुए इसे 'एल्गार परिषद मामले' से पहचानते हुए चर्चाएं शुरू हुईं। पर जैसे ही महाराष्ट्र के गृह मंत्री, अनिल देशमुख ने घोषित किया कि इस मामले की जांच के लिए राज्य सरकार एक 'विशेष जांच दल' (एसआईटी) की नियुक्ति का सोच रही है, केन्द्रीय सरकार ने हस्तक्षेप करके, बिना राज्य सरकार से मशवरा किये, 24 जनवरी 2020 को इस मामले की जांच राष्ट्रीय सुरक्षा एजेंसी (एनआईए) को सौंप दी। इसके चलते एक नयी एफआईआर दर्ज की गई और जांच की ज़िम्मेदारी एक केन्द्रीय व्यवस्था के हाथों में स्थानांतरित हुई। इस चाल को इस केस की दो साल की जांच के बाद से समझा जा सकता है कि यह मामला केन्द्र के लिए

कितनी राजनैतिक अहमियत रखता है।

एनआईए को कोर्ट के दायरे में लाते हुए, 2018 से पुणे के येरवडा जेल में कैद रखे लोगों को फरवरी में मुंबई के तलोजा और भायखला जेल में ट्रांसफर किया गया।

ये किताब उन मानवाधिकार रक्षकों के जीवन पर प्रकाश डालती है जिन्होंने सिर्फ शोषित और पिछड़े तबके के लोगों के अधिकारों के लिए संघर्ष छेड़ा है। कॉर्पोरेट प्रायोजित टीवी चैनलों और ट्रोल दलों द्वारा फैलाए गए झूठे प्रोपेगंडा और झूठी खबरों के इस दौर में, सच को याद रखना और उसे दोहराते रहना बहुत ज़रूरी हो जाता है। ये किताब, इसलिए, एक कोशिश है याद रखने की और दृढ़ता से ये कहने की कि हम भूले नहीं हैं!

"सत्ता के खिलाफ इन्सान का संघर्ष, भूलने के विरुद्ध याद्दाश्त का संघर्ष है।"

हम आपको सलाम करते हैं।

राजकीय कैदी

महेश राऊत

“जिन सभी गांवों में मैं गयी, वहां महेश के लिए बहुत प्यार और सम्मान है। वे सब लोग उन्हें अपने ही घर के एक सदस्य की तरह देखते हैं।”

महाराष्ट्र के गढ़चिरोली ज़िले के रहने वाले महेश अपने ज़िले में आदिवासी समुदायों के हक-अधिकारों के लिए काम करने वाले एक जाने-माने युवा कार्यकर्ता हैं। महाराष्ट्र के एक छोटे-से गांव लाखापुर में जन्मे महेश ने गढ़चिरोली में अपनी स्कूली शिक्षा ली और स्नातक डिग्री करने नागपुर चले गए। उसके बाद वे मुंबई स्थित टाटा सामाजिक विज्ञान संस्था में उच्च शिक्षा लेने गए, जिसे पूरी करके वे प्रधान मंत्री ग्रामीण विकास फेल्लो (पीएमडीआरएफ) के बतौर गढ़चिरोली में काम करने लगे।

महेश ने बहुत मज़बूती से पेसा कानून - पंचायत के प्रावधान (अनुसूचित क्षेत्रों पर विस्तार) अधिनियम, 1996 और वन अधिकार कानून, 2006 के लिए अथक पैरवी की, ताकि स्थानीय समुदायों के जनतांत्रिक अधिकारों का संरक्षण हो सके और वे बड़ी कंपनियों का गैर-कानूनी तरीकों से उनकी ज़मीनों को हड़पने की कोशिशों का मुकाबला कर सकें। महेश अत्यंत निष्ठा के साथ वंचित समुदायों के हक-अधिकारों को एक संवैधानिक परिप्रेक्ष्य में संरक्षित करने के लिए काम करते रहे। अपनी फेलोशिप के पूरे होने पर उन्होंने राज्य के आदिवासी समुदायों के मुद्दों पर ही काम करने का निर्णय लिया।

सामाजिक न्याय के लिए महेश ने व्यापक जनांदोलनों में भाग लिया और नये आंदोलनों को खड़ा भी किया। आदिवासियों और अन्य सीमान्त समुदायों के दबावपूर्ण विस्थापन के खिलाफ लड़ रहे विस्थापन विद्रोही जन विकास आन्दोलन (वीवीजेवीए) के वे सह-समन्वयक थे। वीवीजेवीए के सदस्य के बतौर महेश ने क्षेत्र के तेंदूपत्ता संग्राहक आदिवासी समुदायों को संगठित किया ताकि वे बिचौलियों को बिना शामिल किये खुद अपना माल बेच सकें। अपने क्षेत्र के आदिवासियों के मुद्दों पर काम करने के साथ-साथ महेश भारत जन आंदोलन के भी सदस्य बने जिसे स्वर्गीय श्री बी डी शर्मा ने शुरू किया था। भारत जन आंदोलन के काम के तहत महेश ने सूरजगढ़ माइनिंग परियोजना समेत कई अन्य माइनिंग परियोजनाओं से प्रभावित क्षेत्रों में सहभागी निर्णय प्रक्रियाओं के लिए लोगों को संगठित करने का काम किया।

इस तरह पुलिस और अन्य राजकीय अधिकारियों की ज़्यादतियों के विरोध में उठाई आवाज़ के चलते उनके खिलाफ कई केस दर्ज हुए। पीएमडीआरएफ के कई फेलो द्वारा उनके समर्थन में लिखे गए पत्र में ज़िक्र है कि उनके खिलाफ राजकीय दमन 2013 से शुरू हुआ जिसका प्रमुख कारण था उनका अन्याय के विरुद्ध राजनीतिक काम। उनकी मित्र और साथी फेलो सोहिनी शोएब जो बिहार में काम करती हैं, अपने गढ़चिरोली दौरे के बारे में लिखती हैं, "महेश का इन गांवों में बहुत प्यार और सम्मान था, और जहां-जहां मैं गयी वो उनमें एकमेक था। वे उसे अपने घर का ही एक सदस्य मानते हैं। उनमें से कुछ ने तो मुझे उसे शादी करने के लिए राज़ी करने तक को कहा क्योंकि उन्हें चिन्ता थी वो बहुत ज़्यादा मेहनत करता है और अपनी सेहत का बिलकुल ध्यान नहीं रखता। गांववालों को लगता था कि एक साथी के होने से उसे अपनी ज़िंदगी को और संतुलित तरीके से जीने और काम से घिरे अकेलेपन से निजात का मौका मिलेगा।"

2018 में, महेश को पुणे पुलिस ने माओवादी जुड़ाव और एल्गार परिषद के आयोजन में कथित भूमिका के लिए गिरफ्तार किया। उन्हें नागपुर में अपने घर से गिरफ्तार किया गया और गैर-कानूनी गतिविधियां (रोकथाम) अधिनियम (यूएपीए) की धारायें लगायी गयीं। न तो महेश ने एल्गार परिषद को आयोजित किया था न वे 31 दिसम्बर के कार्यक्रम में गए थे। उनकी गिरफ्तारी स्पष्ट रूप से सरकार और कॉर्पोरेट कंपनियों की सांठ-गांठ के खिलाफ संघर्ष करने वाले मानव अधिकार कार्यकर्ताओं के राजकीय दमन का नतीजा है। सीमान्त समुदायों के संवैधानिक अधिकारों को लगातार बढ़ावा व समर्थन देने के चलते ही उन्हें गिरफ्तारी और लम्बी कैद मिली है। उनका कैद होना संविधान के उन मूल्यों के लिए लड़ रहे कायकर्ताओं के राजकीय दमन का स्पष्ट प्रमाण है, जिन मूल्यों को राज्य खुद ध्वस्त कर रहा है।

हमको पूछना चाहिए, आपके घर पर एक टेलीविज़न है और अगर तीन महीने बाद, आप अपना टेलीविज़न बदलते हैं और उसके लिए कोई मरता है, वो क्या गलत नहीं है? हर बार जब आप एक नया आयफोन लेते हैं, पहले आपको आयफोन6 और अब आपको आयफोन7 चाहिए, और हर एक बार उसके लिए कोई मरता है|

आपने अपनी इच्छाओं को आपकी ज़रूरतनुमा और विकासनुमा पेश कर दिया है, और इसके; लिए हज़ारों आदिवासी मर रहे हैं| हम सब को जीने का अधिकार है, एक अच्छे जीवन का, न्यूनतम सुविधाओं का, और हमारे संघर्ष की भी यही माँग है| लेकिन यह कैसे होता है, और कैसे हो रहा है? हम जो शहर में हैं, वो खनन को विकास के लिए मानते हैं, मुझे उनसे पूछना है, वो कितना इस्तमाल कर रहे हैं और कितना कम्पनी कमा रही है? यहाँ हम केवल आदिवासी लोगों की बात नहीं कर रहे| यह प्रश्न हमारे देश के सभी लोगों के लिए है| अभी जो कानून बनाये जा रहे हैं, क्या ये केवल गरीब के लिए हैं? अगर देश में इतना लोहा और स्टील बनाया जा रहा है, तो फिर इतने लोग बेघर क्यों हैं?

महेश राउत

राजकीय कैदी

रोना विल्सन

उनके शोध का प्रस्तावित विषय था – "मुसलमान अन्य की कल्पनाः समकालीन भारत में राज्य, कानून और नामकरण की राजनीति" (द फिक्शन ऑफ द मुस्लिम अदर: स्टेट, लॉ एंड द पॉलिटिक्स ऑफ नेमिंग इन कंटेम्परेरी इंडिया)। उनका थीसिस कहता है "इस्लामोफोबिया (इस्लाम या मुसलमानों से डर) को भारत के सत्ताधारियों ने हिन्दुत्व की राजनीति को मज़बूत करने के लिए एक विचारधारा की तरह इस्तेमाल किया है।

रोना विल्सन एक शोधार्थी हैं और उन्होंने राजनीतिक बन्दियों की स्थिति, गैर-कानूनी गतिविधियां (रोकथाम) अधिनियम (यूएपीए) जैसे कठोर कानूनों के उपयोग और अन्य कानूनी गुत्थियों पर काम किया है। उन्होंने प्रोफेसर जी एन साईबाबा, हेम मिश्र और अन्य राजनीतिक बन्दियों के पक्ष में सक्रिय अभियान चलाए हैं। ये ऐसे बन्दी हैं जिन्हें ऑपरेशन ग्रीनहंट – मध्य भारत के हाशियाकृत आदिवासियों के खिलाफ युद्ध छेड़ने की सरकार की एक नीति – के खिलाफ आवाज़ उठाने के विरोध में गिरफ्तार किया गया था।

राजनीतिक बन्दियों के साथ काम करने की रोना की रुचि उन दिनों बनी जब वे एक कश्मीरी अध्येता और शिक्षक – स्वर्गीय प्रोफेसर एस ए आर गिलानी – की मुक्ति के अभियान से जुड़े। इन्हें संसद हमला मामले में अन्यायपूर्ण गिरफ्तारी, अत्याचार और अमानवीय व्यवहार झेलना पड़ा था। दरअसल प्रोफेसर गिलानी के न्यायालय से निर्दोष साबित होने और बाइज़्ज़त बरी व रिहा होने के बाद रोना, प्रोफेसर गिलानी व अन्य कार्यकर्ताओं ने मिलकर कमेटी फॉर द रिलीज़ ऑफ पॉलिटिकल प्रिज़नर्स (राजनीतिक बन्दियों की रिहाई के लिए समिति - सीआरपीपी) का गठन किया। रोना सीआरपीपी के जनसम्पर्क सचिव थे और सीआरपीपी के मार्फत ही रोना और प्रोफेसर गिलानी प्रोफेसर साईबाबा के मामले से जुड़े और उनकी रिहाई के लिए संघर्ष करते रहे।

सीआरपीपी के सदस्य के रूप में रोना ने यूएपीए, राष्ट्रीय सुरक्षा कानून (एनएसए), सशस्त्र सेना विशेषाधिकार कानून (अफ्सपा), विभिन्न राज्य स्तरीय कानून जैसे- जन सुरक्षा अधिनियम आदि कठोर कानूनों के गैर-संवैधानिक चरित्र पर और मृत्युदंड (जो एक ऐसी सज़ा है जिसने इस देश में अधिकतर दलितों और मुस्लिमों को निशाना बनाया है) के मनमाने उपयोग के विरोध में कई सम्मेलन आयोजित किए। सीआरपीपी ने बन्दियों पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन (जिनेवा कन्वेंशन) को लागू करने की मांग की है और ऐसे लोगों के लिए कानूनी सहायता की वकालत करती रही है, जो प्रतिकूल स्थिति में हों या मीडिया या पुलिस, सेना अथवा सरकार के अनुचित प्रोपेगंडा के चलते निष्पक्ष जांच या निष्पक्ष मुकदमे से वंचित होने के खतरे में हों।

यह विडम्बना ही है कि रोना को उसी क्रूर कानून यूएपीए के तहत राजनैतिक कैदी बनाया गया।

रोना का जन्म कोल्लम, केरल में हुआ था जहां वे प्राणिशास्त्र में स्नातक की पढ़ाई तक रहे। फिर वे राजनीतिशास्त्र और अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों पर परास्नातक पढ़ाई के लिए पुडुचेरी केन्द्रीय विश्वविद्यालय गए। इसके बाद उन्होंने जवाहरलाल विश्वविद्यालय से एमफिल किया। वे फुटबॉल के शौकीन हैं और इस खेल को करीब से देखते हैं, खासकर लातीन अमरीकी खेल को।

हाल में ही सर्रे विश्वविद्यालय और लीसेस्टर विश्वविद्यालय ने उनके पीएचडी के आवेदन मंज़ूर कर लिए थे। उनके शोध का प्रस्तावित विषय था – "मुसलमान अन्य की कल्पनाः समकालीन भारत में राज्य, कानून और नामकरण की राजनीति" (द फिक्शन ऑफ द मुस्लिम अदर: स्टेट, लॉ एंड द पॉलिटिक्स ऑफ नेमिंग इन कंटेम्परेरी इंडिया)। उनका थीसिस कहता है "इस्लामोफोबिया (इस्लाम या मुसलमानों से डर) को भारत के सत्ताधारियों ने हिन्दुत्व की राजनीति को मज़बूत करने के लिए एक विचारधारा की तरह इस्तेमाल किया है।" वे 'आतंकवादी' के रूप में सामाजिक रूप से निर्मित मुसलमान मर्द की छवि और इस सामाजिक निर्मिति की प्रक्रिया का अध्ययन करने वाले थे। वे समझना चाहते थे कि किस तरह कानून का उपयोग करके एक तरफ तो एक आक्रामक मुसलमान मर्द, एक 'आतंकवादी मर्दानगी' की कल्पना को गढ़ा जाता है, जिसका फिर विचारधारावादी राज्य प्रणाली अधिकांश

आबादी में मुसलमान 'अन्य' की सबसे तगड़ी (सर्वोत्कृष्ट) छवि गढ़ने में उपयोग करती है। वहीं दूसरी तरफ मुसलमान औरतों को दब्बू और अधीन जिंसों की तरह पेश किया जाता है जिन्हें भारतीय राज्य की सुरक्षा की दरकार है।

गिरफ्तारी के बाद, न सिर्फ रोना अपनी डॉक्टरेट की पढ़ाई को आगे नहीं ले जा पाए हैं, बल्कि जो कानूनी सहायता वे अन्य बन्दियों को मुहैया कराते थे, वह भी रुक गई है।

रोना आजीवन एक मानवाधिकार कार्यकर्ता रहे हैं और उनका संघर्ष जेल के भीतर जारी है, क्योंकि वे भलीभांति जानते हैं कि निशाने पर होने, दाग लगाए जाने और न्याय से वंचित किए जाने का मतलब क्या होता है।

राजकीय कैदी

शोमा सेन

अपनी बेटी को लिखे खतों में शोमा ने लिखा था, "भले ही मुझे यहां कैद करके रखा हो, पर मेरे मन और विचार तो अभी भी आज़ाद ही हैं। सारे बन्धनों से पूरी तरह मुक्त।"

शोमा सेन एक प्रख्यात शिक्षाविद, दलितों और महिलाओं के अधिकारों की लड़ाई में सक्रिय रहीं कार्यकर्ता, और अध्यापक हैं। शोमा का बचपन मुंबई में गुज़रा। बाद में, समाज में सबसे हाशियाकृत लोगों के लोकतांत्रिक अधिकारों के लिए लड़ने का निश्चय कर, वे अपने साथी व बेटी के साथ नागपुर चली गईं।

पिछले 30 सालों से बतौर अकादमिक शोमा का नाम सम्मानपूर्वक लिया जाता रहा है। इस दौरान, नागपुर के कई महाविद्यालयों में उन्होंने अध्यापन का कार्य किया और वर्धा विश्वविद्यालय के महिला विभाग से सक्रिय रूप से जुड़ी रहीं। गिरफ्तारी के दौरान, शोमा नागपुर की राष्ट्रसंत तुकडोजी महाराज यूनिवर्सिटी में अंग्रेज़ी विभाग-प्रमुख की भूमिका में कार्यरत थीं। इन सालों में उनका व्यापक लेखन महिला-अध्ययन और उत्तर-उपनिवेशवाद के विषयों पर रहा है।

शोमा के लेखन में विभिन्न ढांचों और व्यवस्थाओं से उत्पीड़ित दलित व आदिवासी महिलाओं की नारीवादी आत्म-चेतनाओं पर चर्चा है। उनके लेखन में महिलाओं का लचीलापन और राजनैतिक दावा प्रतिबिम्बित होता रहा है। लेखन से परे, शोमा का उनके राजनैतिक काम के द्वारा सामाजिक व राजनैतिक प्रक्रियाओं में बदलाव लाने में भी योगदान रहा है। 1970 के आखिर के सालों में, अपने कॉलेज के दिनों में, वे विद्यार्थी प्रगति संगठन का हिस्सा थीं। 1980 के दरमियान उन्होंने छात्रों की पत्रिका 'कलम' का संपादन किया, और उसी दौरान हुए कपड़ा मज़दूरों के आंदोलन में भी शामिल रहीं।

नागपुर आने के बाद भी शोमा का नागरिक व लोकतांत्रिक अधिकारों के लिए काम करना जारी रहा। वे कमिटी फॉर प्रोटेक्शन ऑफ डेमोक्रेटिक राइट्स (सीपीडीआर) के साथ घनिष्ट रूप से जुड़ीं और नागरिक व लोकतांत्रिक अधिकारों के प्रति लोगों को जागृत और संगठित करने के प्रयास कायम रखे। राजकीय दमन और यौनिक हिंसा के खिलाफ महिलाएं (डब्ल्यूएसएस) और स्त्री चेतना जैसे मंचों के साथ भी उन्होंने काम किया। शोमा ने "कमिटी अगेंस्ट वायलेंस ऑन वीमेन (केवो)" को स्थापित कर संचालित किया। केवो ने छत्तीसगढ़ और मणिपुर जैसे सरकार की निष्ठुरता से पीड़ित क्षेत्रों में जांचें आयोजित कीं। महिला राजनैतिक कैदियों को कानूनी सहायता उपलब्ध कराने के लिए उन्होंने लगातार काम किया। उनका ये मानना रहा है कि महिलाओं को लोकतांत्रिक प्रक्रिया और व्यवस्थाओं में सिर्फ प्रतीकात्मक रूप से शामिल न होकर सक्रिय और प्रभावशाली रूप से सहभागी होने का मौका और जगह मिलनी चाहिए। ब्राह्मणवादी पितृसत्तावाद में फंसी दलित महिलाओं के लिए भी उन्होंने बड़ी ताकत लगाकर काम किया। शोमा सार्वजनिक रूप से मुख्यधारा के नारीवाद की भी आलोचक रही हैं; जिसमें जाति के अस्तित्व और दलित महिलाओं का मुख्य समाज व उनके अपने समुदाय के अन्दर होने वाले दमन को लगभग नज़रअंदाज़ किया जाता रहा है।

मानवाधिकारों के लिए लड़ने वालों के खिलाफ सरकार की कड़ी करवाई के अंतर्गत, 60 साल की शोमा को पुणे की पुलिस ने 6 जून 2018 को गिरफ्तार किया। उनकी बेटी ने शोमा के साथ जेल में हुई अपनी मुलाकातें सोशल मीडिया पर साझा कीं। अपनी बेटी को लिखे खतों में से एक पत्र में शोमा ने लिखा है, "भले ही मुझे यहां कैद करके रखा हो, पर मेरे मन और विचार तो अभी भी आज़ाद ही हैं। सारे बन्धनों से पूरी तरह मुक्त।" यह उनकी लचीली भावना को दर्शाता है, जो उनके आर्थराइटिस, उम्र और ज़रूरतों के प्रति जेल के अफसरों के संवेदनशून्य व्यवहार के बावजूद मज़बूत है।

शोमा का शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान, और अलग-अलग जगहों के लोगों; विशेषकर महिलाओं को प्रेरित और संगठित करने की क्षमता की वजह से वे सरकार की नज़रों में

आईं। यह पुरुषवादी राज्य की स्पष्ट मंशा है कि वे उन महिलाओं की आवाज़ दबाना चाहते हैं, जिन्होंने पितृसत्तावादी ढांचों को और उन्हें जकड़ने वाली परम्परावादी जंज़ीरों को तोड़ने के लिए आवाज़ उठाई है।

तुम्हें डर है

हज़ार साल पुराना है उनका गुस्सा
हज़ार साल पुरानी है उनकी नफरत
मैं तो सिर्फ
उनके बिखरे हुए शब्दों को
लय और तुक के साथ लौटा रहा हूँ
मगर तुम्हें डर है कि
आग भड़का रहा हूँ

गोरख पांडेय

राजकीय कैदी

सुधीर ढवले

एक आयोजक, लेखक, कवि, नाटककार, स्वतंत्र पत्रकार और मराठी पत्रिका विद्रोही के संपादक के रूप में सुधीर ढवले ने देश में लोकतंत्र को शक्तिशाली ताकत और मुहिम बनाने के लिए, दलितों के साथ हो रहे अन्याय और अत्याचार के मुद्दों को जनता के बीच लेकर जाने का प्रयास किया।

सुधीर ढवले की एक्टिविज़्म के प्रति दृढ़ प्रतिबद्धता, न्याय में उनके विश्वास पर आधारित है। नागपुर में अम्बेडकरवादी राजनीति के केंद्र इंदौरा में पले-बढ़े सुधीर अपनी युवा अवस्था के दिनों से ही मानवाधिकारों के संघर्ष और सम्मान की लड़ाई में सक्रिय रूप से शामिल रहे हैं। वह 1994 तक नागपुर में जन आंदोलन का हिस्सा थे तत्पश्चात काम के अवसरों की तलाश में मुंबई चले गए।

सुधीर ढवले ने 1995 से अपना जीवन दलितों और अन्य हाशियाकृत समुदायों पर हो रहे अत्याचार के खिलाफ संघर्ष के लिए समर्पित कर दिया। वह सड़कों पर और अदालतों में सक्रिय थे और उन्होंने घाटकोपर रमाबाई नगर दलित हत्याकांड जैसी अत्याचार की घटनाओं पर काम किया है, जिसमें 1997 में मुंबई पुलिस ने डॉ अम्बेडकर की प्रतिमा तोड़े जाने के विरोध में आंदोलन कर रहे 10 दलितों को गोली मार दी थी। वे खैरलांजी आंदोलन (2006 में एक दलित परिवार के नरसंहार के खिलाफ), 2008 में अहमदनगर जिले में बबन मिशाल हत्या, 2008 में मराठवाड़ा में साहेबराव जोंधले की निर्मम हत्या, 2009 में बीड जिले में सदाशिव साल्वे गुरुजी की हत्या, 2009 में नागपुर में मनोरमा कांबले गैंगरेप और हत्या का मामला, 2009 में औरंगाबाद के पास पालगांव में रोहिदास तुपे हत्याकांड और महाराष्ट्र में दलितों पर अत्याचार के अन्य कई और मामलों के विरोध से जुड़े आंदोलनों में भी शामिल थे।

2002 में गुजरात नरसंहार के बाद उन्होंने विद्रोही नाम से एक मराठी पत्रिका शुरू की। यह चार पेज की पत्रिका के रूप में शुरू हुई और जल्द ही आठ पन्नों की हो गई। कुछ सालों में इसने एक पूर्ण पत्रिका का रूप ले लिया जो हर महीने में दो बार प्रकाशित होती थी और जिसमें देश से सम्बन्धित प्रासंगिक मुद्दों पर बात की जाती थी। यह पत्रिका पूरे भारत में दलितों और अन्य अल्पसंख्यकों के मानवाधिकारों के हनन पर दलितों की आवाज़ को बुलंद करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है और साथ ही यह पत्रिका विभिन्न तथ्यपरक रिपोर्ट और मूल्यवान साहित्य भी प्रकाशित करती है।

2006 में खैरलांजी हत्याकांड होने के बाद कई अम्बेडकरवादी, वामपंथी और अन्य प्रगतिशील संगठनों ने जाति प्रथा उन्मूलन के लिए ठोस व दीर्घकालिक कार्य योजना के साथ जाति विरोधी राजनीति पर आधारित आंदोलन को शुरू करने और उसे चलाए रखने की आवश्यकता महसूस की। इस समझ के साथ 6 दिसम्बर 2007 को मुंबई की चैत्यभूमि में रिपब्लिकन पैंथर्स जातिय अन्ताची चलवल (रिपब्लिकन पैंथर्स जाति उन्मूलन आंदोलन) का गठन किया गया था। सुधीर, जो कि इस संगठन के संस्थापक सदस्यों में से एक हैं, ने अपने सालों के अनुभव और राजनीतिक समझ के साथ रिपब्लिकन पैंथर्स के लिए एक नया सैद्धांतिक ढांचा विकसित किया जिसने अपने केन्द्रीय काम के रूप में जाति उन्मूलन कार्यक्रम को प्राथमिकता दी। एक सांस्कृतिक समूह के रूप में रिपब्लिकन पैंथर्स, हिन्दू जाति व्यवस्था के अत्याचारों को दर्शाने के लिए अपने क्रांतिकारी संगीत और नुक्कड़ नाटकों को झुग्गी बस्तियों, ट्रेड यूनियनों, स्कूल और विभिन्न विरोध प्रदर्शनों में लेकर आए। 2011 में महाराष्ट्र पुलिस ने ढवले को देशद्रोह और एक आतंकवादी संगठन का सदस्य होने और उसे समर्थन करने के आरोप में गिरफ्तार किया। ढवले के 40 महीने हिरासत में बिताने के बाद मई 2014 में न्यायाधीश आर जी असमर ने, जो कि महाराष्ट्र के एक ज़िले गोंदिया में एक विशेष यूएपीए अदालत की अध्यक्षता करने वाले न्यायाधीश थे, ढवले और आठ अन्य लोगों को आरोपों से बरी करने का फैसला सुनाया। अदालत ने फैसले में कड़े शब्दों का प्रयोग किया और राज्य पुलिस की जांच प्रक्रिया पर कई प्रश्नचिन्ह खड़े किए।

यह माना जाता है कि विद्रोही पत्रिका के

कारण ही शासन का गुस्सा पनपा था और यह उनकी गिरफ्तारी की वजह बनी। सुधीर ने अपनी रिहाई के बाद न सिर्फ विद्रोही पत्रिका की ज़्यादा लोगों तक पहुंच बढ़ाई बल्कि विभिन्न सामाजिक मुद्दों पर कई विरोध प्रदर्शनों और जुलुस की अगुवाई भी की। वे जातिगत अत्याचारों के खिलाफ गठित कई संयुक्त मोर्चों, जैसे- जातीय अत्याचार विरोधी कार्य समिति, सामाजिक न्याय के लिए गठित संयुक्त कार्य समिति, भीमा कोरेगांव शौर्य दिवस प्रेरणा अभियान और अन्य कई मोर्चों का सक्रिय नेतृत्व कर रहे थे। 2011 के मामले में उनका केस लड़ने वाले वकील सुरेन्द्र गडलिंग, वर्तमान भीमा कोरेगांव मामले में दुखद संयोग से उनके सह-आरोपी हैं।

सुधीर ने अपने राजनीतिक अनुभवों और समझ को अपने लेखन द्वारा भी लोगों के सम्मुख प्रस्तुत किया। उन्होंने यह न केवल विद्रोही पत्रिका द्वारा बल्कि विविध सामाजिक-राजनीतिक मुद्दों पर उनके द्वारा लिखी और सम्पादित की गयी किताबों के माध्यम से भी किया। जेल में अपने बिताए समय के दौरान उन्होंने तीन किताबें लिखी हैं। जनता के दर्द और संघर्ष को आत्मसात करने से उनके लेखन में तीखापन आया।

और लोगों के साथ, सुधीर ने भीमा कोरेगांव लड़ाई की 200वीं वर्षगांठ मनाने और समाज के हाशिए पर रह रहे वर्गों की स्थिति के बारे में चर्चा करने के उद्देश्य से दलित, मराठा और मुस्लिम नेताओं को एक साथ एक मंच पर लेकर आने के लिए 31 दिसम्बर 2017 को एल्गार परिषद का आह्वान किया था।

एक आयोजक, लेखक, कवि, नाटककार, स्वतंत्र पत्रकार और मराठी पत्रिका विद्रोही के संपादक के रूप में सुधीर ढवले ने देश में लोकतंत्र को शक्तिशाली ताकत और मुहिम बनाने के लिए, दलितों के साथ हो रहे अन्याय और अत्याचार के मुद्दों को जनता के बीच लेकर जाने का प्रयास किया।

सुधीर के शब्द सक्रिय, कठोर और पत्थरों तक को हिलाने में सक्षम हैं।

सुधीर बताते हैं कि हर क्रांति को 'अद्वितीय' होना चाहिए।

हमारी अपनी अनोखी क्रांति के लिए...

"यह किस तरह का शहर है?
आप किस तरह के लोग हैं?
जब ज़ुल्म हो तो बगावत होनी चाहिए,
बेहतर हो कि ये रात ढलने से पहले यह शहर जलकर राख हो जाय।"

– ब्रेख्त द्वारा लिखित नाटक द गुड पर्सन ऑफ सेचवान से उद्धृत लाइनें। नीचे लिखी दो पंक्तियों को एफआईआर में उद्धृत किया गया था, यह कि एल्गार परिषद में मौजूद भीड़ को 'उकसाने' के लिए उपरोक्त पंक्तियां मंच से कही गयीं।

राजकीय कैदी

सुरेन्द्र गडलिंग

"केस के जांच अधिकारी ही मुझे मज़ाक में बोल देते थे कि अगली बारी तुम्हारी है। मीडिया में मेरे ऊपर झूठे आरोप लगाने की हद तक ये लोग गए। ये सब कुछ तब हो रहा था जब मैं अदालत में एक पेशेवर वकीलनुमा काम कर रहा था।"

एक युवा दलित विद्यार्थी बतौर, सुरेन्द्र गडलिंग और उनके दोस्तों ने नागपुर की बस्तियों में सांस्कृतिक आयोजन करने और भारतीय समाज में व्यवस्थित जातिगत दमन के विरुद्ध मुहिम चलाने के लिए आव्हान नाट्य मंच शुरू किया था। अपनी पढ़ाई के बाद, सुरेन्द्र गडलिंग रेलवे में भर्ती लेकर एक अपरेंटिसनुमा काम कर रहे थे। जीवन में आगे चलकर उन्होंने वकील बनने का फैसला किया ताकि वे कामगार और हाशियाकृत लोगों के लिए काम कर सकें। दो दशकों के लिए, गडलिंग ने अथक रूप से लगातार काम किया, और देश में आतंकवाद के खिलाफ कार्यरत वकीलों में सबसे सम्मानित वकीलों में से एक बने। बार-बार उन्होंने अदालत में टेररिस्ट एंड डिसरप्टिव एक्टिविटीज़ (टाडा) कानून जैसे क्रूर और काले कानूनों को चुनौती दी। बाद में यही कानून गैर-कानूनी गतिविधियां (रोकथाम) अधिनियम (यूएपीए) में तब्दील हो गया।

एक वकील की हैसियत से गडलिंग ने काफी मुकदमों पर काम किया है। दहेज़-सम्बन्धित मामलों में वे विशेष शासकीय अधिवक्तानुमा नियुक्त हुए। खैरलांजी आंदोलन – 29 सितम्बर 2006 के दिन खैरलांजी, महाराष्ट्र में सवर्ण भीड़ द्वारा एक दलित परिवार की भीषण हत्या के विरोध में शुरू हुए संघर्ष के प्रमुख वकीलों में से एक थे। महाराष्ट्र के विदर्भ क्षेत्र के नागपुर और अन्य ज़िलों में अपने ढाई दशक की वकालत के दौरान सुरेन्द्र गडलिंग ने हज़ारों मामलों पर काम किया।

हालांकि गडलिंग एक दलित वकील होने के नाते हमेशा ही धमकियों और अभित्रास से घिरे हुए थे, उनकी परिस्थिति और खतरे में हुई जब उन्होंने डॉ जी एन साईबाबा का केस लिया। डॉ जी एन साईबाबा दिल्ली विश्वविद्यालय के व्हीलचेयर पर निर्भर प्रोफेसर हैं जिन्हें यूएपीए के अंतर्गत आरोपित किया गया है। वास्तव में, साईबाबा का केस, गडलिंग के कुछ ही हारे गए मामलों में से एक है। राज्य द्वारा 'निशाना' बनाये जाने की कुछ वारदातों का वर्णन करते हुए, गडलिंग ने अदालत में बताया कि साईबाबा का केस लेने के बाद उनके ऊपर स्पष्ट रूप से और अस्पष्ट तरीकों से भी धमकियां बढ़ती गयीं। "केस के जांच अधिकारी ही मुझे मज़ाक में बोल देते थे कि अगली बारी तुम्हारी है। मीडिया में मेरे ऊपर झूठे आरोप लगाने की हद तक ये लोग गए। ये सब कुछ तब हो रहा था जब मैं अदालत में एक पेशेवर वकीलनुमा काम कर रहा था।"

गडलिंग बताते हैं कि 20 साल पहले जब वे अनिल बोरकर के केस में वकील थे तब चंद्रपुर पुलिस ने एक प्रेस विज्ञप्ति जारी की थी जिसमें उन्हें एक 'फरार आरोपी' बताया गया था| "मुझे अंतरिम राहत के लिए उच्च न्यायालय जाना पड़ा और मैंने अग्रिम ज़मानत के लिए आवेदन डाला। तब से मैं कई बार अपने काम और व्यक्तिगत कारणों से चंद्रपुर गया हूं। पुलिस ने मेरी गिरफ्तारी करने की न कभी कोशिश की, न ही उन्होंने यह स्पष्ट किया कि क्या इस मामले में मैं सच्ची में एक 'वांटेड' आरोपी था। लेकिन उन्होंने यह सुनिश्चित कर दिया कि प्रेस मुझे आरोपी की नज़र से देखे।"

एक दिन पहले नागपुर के इन्दोरा में भीम चौक से उनके घर से गिरफ्तार किये जाने के बाद 7 जून 2018 की सुबह 5 बजे उन्हें पुणे ज़िला कोर्ट में पेश किया गया। शुरुआती प्राथमिकी (एफआईआर) में गडलिंग का नाम नहीं था, लेकिन फिर भी यूएपीए, एक ऐसा क्रूर कानून जो नागरिक और मानव अधिकारों के विरुद्ध है, के अंतर्गत उन्हें आरोपित किया गया – ठीक उन्हीं लोगों की तरह जिनका उन्होंने वकील बनकर प्रतिनिधित्व किया था; इनमें अरुण फरेरा और प्रोफेसर जी एन साईबाबा शामिल हैं। वकीलों और परिवारजनों की पहुंच से वंचित, सुबह के इस अजीब समय पर उन्हें पुलिस हिरासत में वापस रिमांड पर दिया गया। स्वास्थ्य की कई मुश्किलों के बावजूद, जहां उन्हें अस्पताल में गहन केयर यूनिट (आईसीयू) में भर्ती करने की आवश्यकता रही है, वहां कानून के विभिन्न प्रावधानों में ज़मानत के हकदार होने के

बावजूद, वे अभी भी कैद में हैं।

छह महीने बाद, 6 जनवरी 2019 के दिन, गडलिंग और उनके गिरफ्तार साथी, क्रांतिकारी कवि, वरवरा राव, जो कि उनसे पहले गिरफ्तार किये गए लोगों में से एक हैं, को पुणे के येरवडा जेल से पुलिस हिरासत में दिया गया और अगले दिन गढ़चिरोली की अहेरी अदालत में 2016 सूरजगढ़ लौह अयस्क खदान में आगजनी के आरोप में पेश किया गया। यह फिर से एक और झूठा गढ़ा हुआ केस गडलिंग और राव पर थोपा गया है।

आज, भीमा कोरेगांव की पेशियों में जाकर हम उन्हें पूरी अदालत को अपनी हाज़िरजवाबी से हंसाते हुए सुन सकते हैं, और प्रेरणा ले सकते हैं यह समझने के लिए कि मज़बूती और दृढ़ता कैसी दिखती है।

वैसे तो पीड़ित,
वो जो अन्याय का शिकार बना है,
जिस पर हमला किया जा रहा है,
वो इन्सान बोलता है कि
वो अदालत में जाना चाहता है।
लेकिन अब उल्टा होता है।
वो जिसके पास डंडा है,
वो जो प्रताड़ित कर रहा है,
वो अब अदालत जाने की बात करता है।
न्याय व्यवस्था,
जो कमज़ोर के लिए हथियार होनी चाहिए थी,
अब शोषणकर्ताओं के हाथों में
एक औज़ार बन गयी है।
यहां जंगल राज है।
इसको लोकतंत्र नहीं बोल सकते।
इसको कानून का राज नहीं बोल सकते।
(गिरफ्तार और) पुनःगिरफ्तारी नियम ही बन गयी है।

सुरेन्द्र गडलिंग

राजकीय कैदी

अरुण फरेरा

“अगर मैं एक एक्टिविस्ट हूं और कथित माओवादियों या आतंकियों के मामलों को समझना चाहता हूं, या मैं एक वकील हूं और इस तरह के किसी मामले को लड़ रहा हूं तो इसमें क्या? इससे व्यवस्था को मुझे भी ऐसे ही किसी मामले में दोषी समझने की छूट किस तरह मिलती है?”

अरुण फरेरा एक बहुमुखी प्रतिभा वाले व्यक्ति हैं। वे एक लेखक, वकील, कार्टूनिस्ट, उभरते हुये कहानीकार और एक बेहतरीन दोस्त हैं। वे एक बहुचर्चित जेल संस्मरण 'कलर्स ऑफ द केज' के लेखक हैं। इंडियन असोशिएशन ऑफ पीपुल्स लायर (आईएपीएल), जो कि हाशिये पर रह रहे लोगों को मुफ्त विधिक सहायता उपलब्ध कराने वाले वकीलों का एक संगठन है, के प्रमुख सदस्य रहे हैं। वह कमेटी फॉर प्रोटेक्शन ऑफ डेमोक्रेटिक राइट (सीपीडीआर) के सदस्य भी रहें हैं जोकि आपातकाल और उसके बाद दमन के नतीज़े के रूप में एक्टिविस्टों द्वारा गठित की गई थी।

मई 2007 में उन्हें अवैधानिक तरीके से गिरफ्तार कर प्रताड़ित किया गया। बाद में उन पर नक्सली होने का आरोप लगाकर राक्षसी कानून यूएपीए के तहत धारा मढ़ दी गई। मीडिया में बिलकुल पस्त हालत में दिख रहे अरुण की तस्वीरें जारी की गईं जो कि पुलिस के हाथों उनकी गंभीर यातना की कहानी बयां करती हैं।

परिवार, दोस्तों व संगठन के साथियों से अलग हो जाने और एक झूठे व गलत तरीके से जेल भेजे जाने के व्यक्तिगत व सामूहिक सदमे को वे जाहिर नहीं होने देते। अरुण की सहज मुस्कान और उनका व्यवहार, इसे बखूबी छिपा लेते हैं। कोई देखकर जान ही नहीं सकता कि यह वही आदमी है, जिसकी तस्वीर 2007 में उसकी गिरफ्तारी के बाद घायल हुये चेहरे के साथ अखबार के मुख्य पृष्ठ पर छपी थी।

सितम्बर 2010 में नागपुर कोर्ट द्वारा उन्हें बरी किया गया सिर्फ इसलिए कि सादे कपड़ों में पुलिस उन्हें जेल के दरवाज़े से ही फिर गिरफ्तार कर सके। उन्हें अपने परिवार की एक झलक भी लेने नहीं दी गई जो कि बाहर उनका इंतज़ार कर रहा था। इस बार उन्हें उस अपराध का आरोपी बनाया गया जो उनके जेल में बंद होने के दौरान घटित हुआ। चार साल व आठ महीने की कैद काटने के बाद अरुण जनवरी 2012 में बाहर आए। बाद में उनका मामला एक्टिविस्ट लोगों के लिए नार्को टेस्ट का विरोध करने का एक मुद्दा बना, जो कि पुलिस द्वारा अरुण पर इस्तेमाल किए जाने के समय अवैध नहीं था।

कई साल जेल में गुज़ारने के बावजूद, अपनी रिहाई के बाद उन्होंने 2015 में सिद्धार्थ कॉलेज से अपनी कानून की पढ़ाई पूरी की और 2016 में वकालत शुरू की। अपनी राजनीति और एक्टिविज़्म को वे कोर्ट रूम तक लेकर गए। उन्होंने कोर्ट में उन लोगों की तरफ से पैरवी की जिन्हें वकील की ज़रूरत तो थी पर वे भारी भरकम फीस नहीं चुका सकते थे।

अरुण की जेल डायरी 'कलर्स ऑफ द केज' जो कि बाद में एक संस्मरण बनी, भारत में कैद के दौरान लिखे गए साहित्य के रूप में उल्लेखनीय रही, क्योंकि पहली बार भारत के लोग इतने बारीक और संवेदनशील तरीके से कैद की असलियत से रूबरू हुए। इसमें उन्होंने कस्टडी में होने वाली यातना, फर्जी मामलों में बिताये कैद के सालों और इस दौरान कानूनी प्रक्रियाओं के घोर उल्लंघन की दास्तान लिखी है। उन्होंने क्रूरता के विरोध में कैदियों द्वारा की गई हड़तालों और उन छोटी-छोटी ढांढस बांधने वाली चीज़ों के बारे में भी लिखा है जो उम्मीद की लौ जलाए रखती हैं। बदनाम और घृणित अंडा सेल में एकांत कैद के बारे में अरुण ने लिखा है, "क्रूर होने से ज़्यादा उसकी खासियत वहां इन्सानों की गैर-मौजूदगी है जो आपको खाने को दौड़ती है। यदि आप अंडा सेल में हैं तो आपको अपनी काल कोठरी में 15 घंटे या उससे भी ज़्यादा वक्त अकेले बिताना पड़ता है। आपको सिर्फ पहरेदार दिखाई देते हैं या फिर कभी-कभार आपके दूसरे हमकैदी। अंडा सेल में कुछ हफ्तों की कैद आपको तोड़कर रख सकती है।"

अपनी किताब 'कलर्स ऑफ द केज' की लॉन्चिंग के दौरान अरुण के कहा, "अगर मैं एक एक्टिविस्ट हूं और कथित माओवादियों या आतंकियों के मामलों को समझना चाहता हूं, या मैं एक वकील हूं और इस तरह के

किसी मामले को लड़ रहा हूं तो इसमें क्या? इससे व्यवस्था को मुझे भी ऐसे ही किसी मामले में दोषी समझने की छूट किस तरह मिलती है?"

दुर्भाग्य से उन्हें फिर से ठीक इसी वजह से गिरफ्तार किया गया है; उन लोगों के अधिकारों की आवाज़ उठाने के लिए जो बिना किसी कानूनी सहायता के भारतीय जेलों में सड़ रहे हैं।

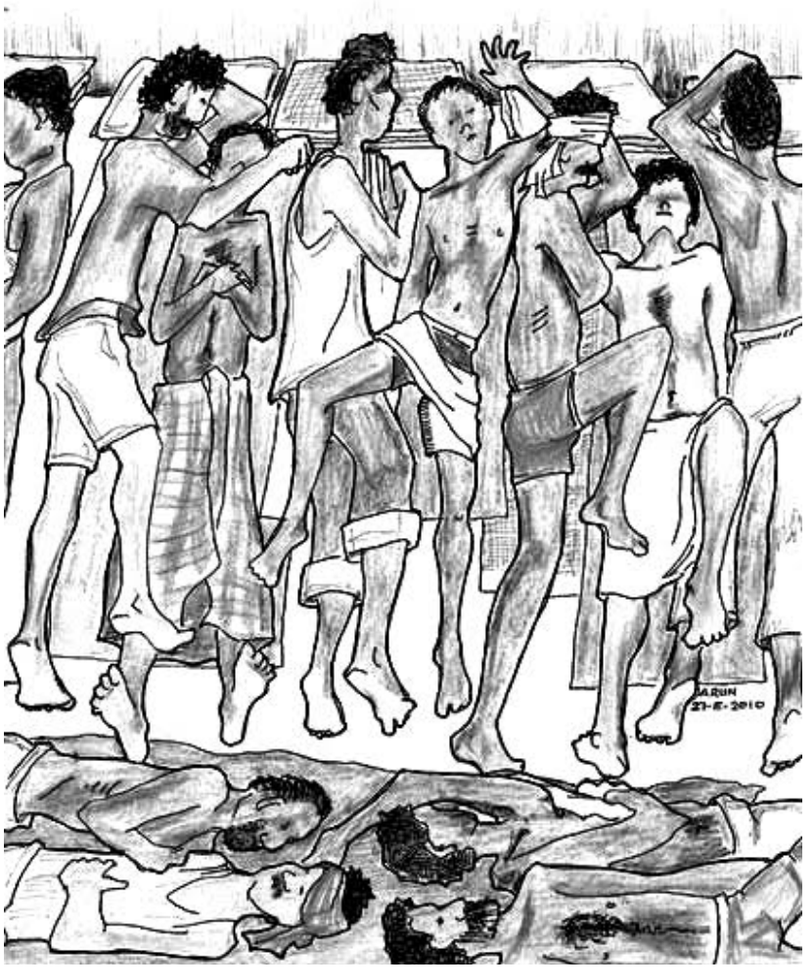

अरुण फरेरा यांची कलाकृती

राजकीय कैदी

सुधा भारद्वाज

“यदि नक्सलाइट होने का मतलब है, आदिवासियों के अधिकारों के लिए लड़ना, मज़दूरों और किसानों के लिये लड़ना, दमन और शोषण के खिलाफ लड़ना और अपनी पूरी ज़िंदगी उनके हकों के लिए देना, तो शायद नक्सलाइट काफी अच्छे होते हैं।”

“अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस के मौके पर, हार्वर्ड विमेन लॉ एसोसिएशन द्वारा हार्वर्ड लॉ स्कूल की वार्षिक प्रदर्शनी, दुनिया भर की ऐसी प्रेरणास्पद महिलाओं को सामने लाती है, जिन्होंने कानून और नीति में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। सम्मान सूचि में वे औरतें होती हैं जो या तो हार्वर्ड लॉ स्कूल के छात्रों या शिक्षकों द्वारा चयनित की गई हों। ये औरतें अपने-अपने क्षेत्रों में न्याय के लिए बुलंद आवाज़ें हैं – चाहे वे हाई कोर्ट की जज हों या कानून की कक्षा पढ़ाती हों, या न्याय की लड़ाई में आम लोगों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर सड़कों पर आती हैं।”

या फिर इसके लिए जेल में ही क्यों न हों?

वकील सुधा भारद्वाज, हार्वर्ड विमेन लॉ एसोसिएशन द्वारा 2019 में 6वीं प्रदर्शनी में सम्मानित की गईं। वे हार्वर्ड लॉ स्कूल की इस अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस की प्रदर्शनी का हिस्सा हैं और वे मुंबई के सेंट्रल जेल की एक बंदी हैं। एक वकील और एक बंदी? ये विरोधाभास कैसे उत्पन्न हुआ?

अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त अर्थशास्त्री प्रोफेसर कृष्णा भारद्वाज की बेटी सुधा, अमरीका में जन्मी थीं और पैदाइश से अमरीकी नागरिक थीं। उन्होंने 18 साल की उम्र में अपनी अमरीकी नागरिकता छोड़ दी। इसके बाद उन्होंने 1984 में आईआईटी कानपुर से गणित में एमएससी की। पढ़ाई के दौरान ही उनका वास्ता यूपी के मज़दूरों के साथ पड़ा। इस अनुभव ने उन्हें छत्तीसगढ़ मुक्ति मोर्चा (सीएमएम) के साथ काम करने के लिए प्रेरित किया, जो कि छत्तीसगढ़ के आदिवासी और मज़दूरों का एक ट्रेड यूनियन है। तब से आज तक वे इसी हक और न्याय की लड़ाई में लगी हुई हैं। इसकी न्यायिक लड़ाई को पुख्ता करने के लिए उन्होंने सन 2000 में वकालत की डिग्री भी ली। आदिवासियों और मज़दूरों का सतत साथ उन्हें इस लड़ाई को आगे तक लड़ने की ताकत देता है।

सीएमएम के साथ काम करते हुए उन्होंने ‘जनहित’ की स्थापना की। जनहित कई औद्योगिक मज़दूरों व पूरे-पूरे गांवों को उनकी ज़मीनों से बेदखली के विरुद्ध, खनन के नाजायज़ कब्जे के विरुद्ध, जल, जंगल, ज़मीन के अधिकारों के लिए और पर्यावरण के शोषण के विरुद्ध, कानूनी संघर्ष और जनहित याचिकाओं में मदद करता है। जनहित ने जिंदल, वेदांता, बाल्को, लाफार्ज होलसिम, डी बी पावर, अदानी, ग्रासिम जैसी ताकतवर औद्योगिक कंपनियों के खिलाफ याचिकाएं दर्ज की हैं और इनकी लड़ाई सतत लड़ रहे हैं।

डॉ बिनायक सेन की गिरफ्तारी के बाद, सुधा ने पीपल्स यूनियन फॉर सिविल लिबर्टीज (पीयूसीएल), छत्तीसगढ़ को दोबारा बढ़ाने में अहम भूमिका अदा की। इसी समय वे पीयूसीएल की जनरल सेक्रटेरी भी रहीं। इस दौर में उन्होंने मानव तस्करी, अल्पसंख्यकों पर हमले, सरकार द्वारा अधिकारों के हनन के शिकार हुए बस्तर के आदिवासी परिवारों और उन पत्रकारों और लेखकों जो सरकार की ज़्यादतियों के खिलाफ आवाज़ उठा रहे थे, उन सबकी न्यायिक मदद की। हाल ही में उन्हें इंडियन एसोसिएशन ऑफ पीपल्स लायर्स (आईएपीएल) की उपाध्यक्ष के पद पर चुना गया। वे छत्तीसगढ़ के दलित और मानव अधिकार वकीलों पर हुए हमलों पर कैम्पेन में सक्रिय थीं और उन्होंने इस पर आईएपीएल द्वारा जांच किए जाने में भी सक्रिय भूमिका अदा की।

सुधा को अगस्त 2018 में उनके फरीदाबाद स्थित घर से गिरफ्तार किया गया, जहां वो अपनी बेटी के साथ रह रही थीं। उस समय वे नेशनल लॉ युनिवर्सिटी दिल्ली (एनएलयू) में अतिथि प्रोफेसर के रूप में आदिवासी हक, भूमि अधिग्रहण कानून और 5वीं और 6वीं अधिसूचि पर छोटे सेमिनार कोर्स लेने वाली थीं। पिछले साल उन्हें वैश्वीकरण के समय में कानून और न्याय पर एक कोर्स लेना था। एनएलयू के छात्र इस क्षति को महसूस कर रहे हैं।

उनकी बेटी मायशा के पत्रों से सुधा की न थकने वाली ऊर्जा का आभास होता है। “यदि नक्सलाइट होने का मतलब है, आदिवासियों के अधिकारों के लिए लड़ना, मज़दूरों और किसानों के लिये लड़ना, दमन और शोषण के खिलाफ लड़ना और अपनी पूरी ज़िंदगी उनके हकों के लिए देना, तो शायद नक्सलाइट काफी अच्छे हैं।”

वकील गुनीत अहुजा अपने एक खुले पत्र में लिखती हैं – सुधाजी से मेरी पहली मुलाकात में मैंने उनसे बस्तर में आदिवासियों की स्थिति को बयां करने वाले उन कथानकों के बारे में पूछा जो कि एक-दूसरे से प्रतिस्पर्धा में हैं। उनके जवाब ने मुझ पर काफी गहरा असर छोड़ा।

उन्होंने कहा था – “एक संकरी गली में पैदल चलने वाले को कार वाले समस्या का कारण प्रतीत होते हैं और कार चलाने वालों को लगता है कि पैदल चलने वाले लोग समस्या की जड़ हैं – आप कहां हैं इससे आपका परिपेक्ष बदलता है।”

सुधा उन पैदल यात्रियों के साथ हैं, उनके हितों के लिए लड़ती हैं। वह मानती हैं कि सड़क हमारी है। राज्य वह कार है जो रास्ते में किसी भी तरह की रुकावट पैदा करने वाले पैदल यात्रियों को नहीं चाहती है। वह मानती है कि सड़क उसकी है और उसे अपने वर्ग-मित्रों के हितों के लिए खोलना चाहती है। राज्य के लिए सुधा उनके रास्ते का कांटा हैं जिन्हें जेल में होना चाहिए। हमारे लिए वे पैदल जनता की, मानव अधिकारों की मददगार और योद्धा हैं।

“यदि आप अपने आपको सुरक्षित और तटस्थ रखना चाहेंगे तो आप कामयाब नहीं हो सकेंगे।” (पक्ष लेना ज़रूरी है)
- सुधा भारद्वाज, द वायर

राजकीय कैदी

वरवरा राव

**“जनता के दिलों में बजते हुए
विजयी नगाड़ों को
तुमने समझा था मात्र एक ललकार और
तान दीं उस तरफ अपनी बन्दूकें...
अब दसों दिशाओं से आ रही है
क्रान्ति की पुकार”**

प्रसिद्ध तेलुगू कवि वरवरा राव के लिए जेल में डाले जाना कोई नई बात नही है। पिछले 45 सालों में उन्होंने कम से कम 25 मामलों का सामना किया है। उनके गिरफ्तारी के इतिहास, प्रबल लेखन, कविताओं, लम्बे शिक्षण करियर और राजनैतिक समझ, सत्ता व दमन के विश्लेषण और आज़ादी की राह से उनकी कहानी समझी जा सकती है।

वरवरा राव या वीवी का जन्म 1940 में आंध्र प्रदेश के वारंगल ज़िला के चिन्ना पण्ड्याला में एक मध्यम-वर्गीय परिवार में हुआ। 1957 में, 17 साल की उम्र में उन्होंने अपनी कविताएं छापनी शुरू कर दीं, पर क्रांतिकारी सिद्धांतों में उनकी रुचि महबूबनगर में लेक्चरर के पद पर काम करते हुए बढ़ी। इस दौरान उन्होंने एक साहित्य और काव्य समूह, 'साहिती मित्रुलु' और एक गैर-राजनैतिक पत्रिका, 'सृजना' का निर्माण भी किया। और बाद में, 'तिरुगुबडु कावुलु' (विद्रोही कवि) से जुड़े, जो श्रीकाकुलम में चल रहे सशस्त्र संघर्ष से सहानुभूति रखते थे।

इस दौरान, वीवी ने 'विरासम' या विप्लव रचयिताला संगम (रिवॉल्यूशनरी राइटर्स एसोसिएशन) की स्थापना की, एक ऐसा संगठन जिसको आंध्र प्रदेश सरकार ने अगस्त 2005 में प्रतिबन्धित किया, और नवम्बर 2005 में आंध्र प्रदेश की हाई कोर्ट ने यह प्रतिबन्ध हटाया।

वीवी, जो अब 80 साल के हैं, ने अपनी काव्य रचनाओं के 15 संग्रह प्रकाशित करने के अतिरिक्त अनेक संकलनों को सम्पादित भी किया है। उनकी कविताओं का लगभग सभी भारतीय भाषाओं में अनुवाद हुआ है और मलयालम, कन्नड़, हिंदी और बंगाली भाषाओं में छापी गई हैं। 1983 में प्रकाशित उनकी थीसिस, 'तेलंगाना मुक्ति संघर्ष और तेलुगू उपन्यास – समाज और साहित्य के परस्पर सम्बन्धों का अध्ययन' को तेलुगू भाषा में मार्क्सवादी आलोचनात्मक अध्ययन का एक बेहतरीन उदाहरण माना जाता है।

जेल में उन्होंने केन्यन लेखक, अनगूगि वा थिओंगो की जेल डायरी 'डीटेंड' और उपन्यास 'डेविल ऑन द क्रॉस' का तेलुगू में अनुवाद किया। उन्होंने अपनी जेल डायरी 'सहचारुलु' (1990) भी लिखी, जिसका अंग्रेज़ी में 'कैप्टिव इमेजिनेशन' (बन्दी कल्पना) के नाम से अनुवाद किया गया।

वीवी को सबसे पहले, 1973 में बदनाम आतंरिक सुरक्षा व्यवस्था अधिनियम के तहत गिरफ्तार किया गया था। फिर उन्हें इमरजेंसी के दौरान गिरफ्तार किया और जेल के गेट पर पुन: गिरफ्तार किया, और इमरजेंसी हटने के एक हफ्ते बाद तक भी उन्हें जेल में रखा। इमरजेंसी के दौर के बाद, वे कई जानलेवा हमलों से भी बचे।

'सिकंदराबाद कॉन्स्पीरेसी केस' में आंध्र प्रदेश सरकार के खिलाफ साज़िश रचने वाले 46 आरोपियों में वीवी भी थे, और 1985 में फिर से जेल गए। 'रामनगर कॉन्स्पीरेसी केस' में भी वीवी एक आरोपी थे, उन पर आंध्र प्रदेश पुलिस के 2 सिपाहियों को मारने की योजना बनाने की मीटिंग में शामिल होने का आरोप था। 17 साल बाद, 2003 में, आखिरकार उन्हें इन आरोपों से बरी किया गया।

वीवी नव-उदारवाद वैश्वीकरण के दृढ़ विरोधक रहे हैं, खासकर वो वैश्वीकरण नीतियां जो चन्द्रबाबू नायडू की सरकार ने 1990 के दशक में अपनायी थीं। आंध्र प्रदेश सरकार और नक्सलवादियों के बीच में शान्ति-वार्ता के लिए, वह 'पीपल्स वॉर ग्रुप' की तरफ से दूत बनकर गए। जब बातचीत के कई दौर सफल नहीं हुए, तो 'विरासम' पर प्रतिबन्ध लग गया जो बाद में बहाल किया गया। प्रतिबन्ध के बाद, राव 2005 में फिर गिरफ्तार किए गए और 2006 में रिहा हुए। 2014 से तेलंगाना राज्य बनने के बाद वे 4 और बार गिरफ्तार हो चुके हैं।

पिछले 4 दशकों में, वीवी ने आयुध अधिनियम, 1959 और एक्सप्लोसिव

सब्स्टैन्सेस एक्ट, 1908 के तहत कम से कम 9 केसों का सामना किया है। इनमें से शायद सबसे हास्यस्पद और अजीब केस था - 1985 में एक स्टूडेंट्स यूनियन कार्यकर्ता की हिरासत में मौत होने के बाद आयोजित हड़ताल में राव पर बम बांटने का आरोप लगाया जाना। जवाब में, वरवरा राव ने एक यादगार कविता लिखी, जिसका नाम था: 'रिफ्लेक्शन' (चिंतन)।

चिंतन

मैंने बम नहीं बांटा था
ना ही विचार
तुमने ही रौंदा था
चींटियों के बिल को
नाल जड़े जूतों से।

रौंदी गई धरती से
तब फूटी थी प्रतिहिंसा की धारा

मधुमक्खियों के छत्तों पर
तुमने मारी थी लाठी
अब अपना पीछा करती मधुमक्खियों
की गूंज से
कांप रहा है तुम्हारा दिल!

आंखों के आगे अंधेरा है
उग आए हैं तुम्हारे चेहरे पर भय के
चकत्ते।

जनता के दिलों में बजते हुए
विजयी नगाड़ों को
तुमने समझा था मात्र एक ललकार
और
तान दीं उस तरफ अपनी बन्दूकें...
अब दसों दिशाओं से आ रही है
क्रान्ति की पुकार।

राजकीय कैदी

वर्नन गोंज़ाल्विस

“मेरे पिता की बहुत-सी बातों में से जिसका मैं सबसे अधिक सम्मान करता हूं वह है अपने विश्वास व आदर्शों के प्रति उनकी प्रतिबद्धता, जो सही है। जिनके हक नहीं मिलते उनके साथ वे हमेशा खड़े होते आये हैं और खड़े होते रहेंगे। यह बात न पहले उन्हें रोक पाई थी और न अब! उनकी प्रेरणा अटूट है और वे अपने आदर्शों के प्रति हमेशा सच्चे रहेंगे।”

आधी बांह की ढीली-सी कमीज़ और वैसा ही पतलून, चश्मा और झोला थामे हंसमुख चेहरे वाले गोंज़ाल्विस प्रभावशाली व बुद्धिमतापूर्ण व्यक्तित्व वाले इन्सान हैं। गोंज़ाल्विस हर किसी के साथ बड़ी आसानी से घुलमिल जाते, चाहे वे 6 साल के हों या 60 साल के। उनके व्यवहार में आतंरिक खुशी साफ झलकती है। कॉलेज के दिनों में उन्होंने एक बैंड शुरू किया था लेकिन जन आंदोलन में जुड़ने के लिए बैंड छोड़ दिया। उनके गानों में अब भी 70 के दशक के रॉक म्यूजिक का अंदाज़ दिखता है।

वर्नन की लेखनी उतनी ही स्पष्ट है जितनी कि उनकी बराबरी व न्याय के सिद्धांत पर आधारित एक समाज की परिकल्पना, जहां वर्ग, जाति, वर्ण, जेंडर आदि के आधार पर कोई भेदभाव न हो। वह एक गंभीर राजनैतिक आलोचक हैं तथा जटिल सामाजिक, राजनैतिक व आर्थिक मुद्दों पर सरलता से बहस कर पाते हैं। वर्नन प्रगतिशील राजनैतिक अंतर्धारा को समझने में दिलचस्पी लेते हैं।

वह एक मैंग्लोरियन ईसाई दम्पति के पुत्र हैं। मुंबई स्थित भायखला इलाके के एक साधारण चाल में पले-बढ़े वर्नन पढ़ाई में अच्छे थे। वाणिज्य के विषय में उन्हें मुंबई विश्वविद्यालय से स्वर्ण पदक मिला था। बाद में, मज़दूर संगठन, झुग्गीवासी, श्रमिकों के साथ काम करने के लिए उन्होंने सीमेंस कम्पनी की नौकरी छोड़ दी। इस दौरान उन्होंने मुंबई के प्रमुख महाविद्यालयों जैसे- रूपारेल कॉलेज, एचआर कॉलेज ऑफ कॉमर्स एंड इकोनॉमिक्स व अकबर पीरभॉय कॉलेज ऑफ कॉमर्स एंड इकोनॉमिक्स में पढ़ाया। बहुत कम लोग जानते हैं कि कॉलेज के दिनों में वह एक संगीतकार बनना चाहते थे।

1983 के आसपास कोयले की खान में काम करने वाले मज़दूर के साथ ही असंगठित क्षेत्र के मज़दूरों के साथ काम करने के लिए वह नागपुर के पास चंद्रपुर चले गए। 1984 में उन्होंने अपनी साथी कार्यकर्ता सुसान अब्राहम से शादी की। यह शादी दो अनोखे व अति स्वतंत्र व्यक्तित्वों का मिलन था। अगले 10 साल तक वे चंद्रपुर में काम करते रहे। 1994 में उनके पुत्र सागर के जन्म के बाद वे मुंबई लौट गये।

19 अगस्त 2007 को एटीएस मुंबई ने उन्हें उनके घर से गिरफ्तार कर लिया। लेकिन उन्हें उनके सह-अभियुक्त एस श्रीधर के गोवंडी स्थित घर से गिरफ्तार किया गया है ऐसा झूठ फैलाया गया। उन पर 'उच्च-स्तर' के नक्सली होने एवं विस्फोटक रखने का आरोप लगाया गया। इस घटना के कुछ महीने पहले से वर्नन आदिवासी समुदाय के अधिकारों के लिए महाराष्ट्र के चंद्रपुर ज़िले में काम कर रहे थे। उनके खिलाफ 20 मामले दर्ज किये गये। उन्होंने 6 साल जेल में गुज़ारे जब उनकी जांच विचाराधीन कैदी के रूप में खिंचती रही। 18 मामलों में उनको बरी कर दिया गया। एक मामले में अपराधी ठहराया गया जिसके खिलाफ उनकी अपील नागपुर के कोर्ट में लंबित है। आखिरी मामले के निरस्तीकरण का आवेदन गुजरात के हाई कोर्ट में अटका हुआ है।

जेल में रहने के दौरान, ज़्यादातर समय वर्नन ने लेखन कार्य में बिताया। अभी वह जेल में लिखे संग्रह पर काम कर रहे हैं। बन्दी जीवन के दौरान लिखी लघु कहानियों का संकलन सम्पादित कर चुकेहैं। उनमें से एक है 'जेलबर्ड जब्बर'। उन्होंने अन्नाभाऊ साठे की कहानियों का मराठी से अंग्रेज़ी में आलेफ पब्लिकेशन 'ए क्लच ऑफ इंडियन मास्टरपीसिस' के लिए अनुवाद किया। जेल से रिहा होने के बाद उन्होंने प्रचलित कानून, दलित व आदिवासी समुदाय के अधिकार, जेल की स्थिति, कॉर्पोरेट की सांठ-गांठ से ज़मीन हथियाना, सरकार द्वारा वंचित समुदाय के खिलाफ आपराधिक न्याय प्रणाली का दुरुपयोग, यूएपीए खत्म करना जैसे विषयों पर लेख लिखे। 'हार्शर पनिशमेंट्स एंड रिट्रिब्यूटिव क्रिमिनल जस्टिस' शीर्षक से प्रकाशित उनका लेख, अपराध नियंत्रण के सन्दर्भ में देश की न्याय प्रणाली के बारे में एक महत्वपूर्ण व्याख्या है।

वर्नन के बेटे सागर, संक्षेप में उनका जैसा वर्णन करते हैं, वही उनके करीबी लोग भी मानते हैं:

"मेरे पिता की बहुत-सी बातों में से जिसका मैं सबसे अधिक सम्मान करता हूं वह है अपने विश्वास व आदर्शों के प्रति उनकी प्रतिबद्धता, जो सही है। जिनके हक नहीं मिलते उनके साथ वे हमेशा खड़े होते आये हैं और खड़े होते रहेंगे। यह बात न पहले उन्हें रोक पाई थी और न अब! उनकी प्रेरणा अटूट है और वे अपने आदर्शों के प्रति हमेशा सच्चे रहेंगे।"

राजकीय कैदी

आनंद तेलतुंबड़े

आनंद तेलतुंबड़े वामपंथी-मार्क्सवादी वर्ग विश्लेषण से सम्बन्ध रखते हैं, लेकिन वे वामपंथियों के वर्ग विश्लेषण में जाति व्यवस्था के सवालों को न लाने पर कड़ी आलोचना भी करते हैं। उनका मानना है कि कम्युनिस्ट और दलित आंदोलनों को एक बुलंद, संगठित क्रांतिकारी ताकत के रूप में एक साथ आना चाहिए, और चूंकि जाति, लिंग और हमारी पहचान से जुड़े मसले एक सामाजिक वास्तविकता हैं, उन्हें भी वर्ग-संघर्ष का हिस्सा होना चाहिए।

आनंद तेलतुंबड़े एक इंजीनियर, आईआईएम अहमदाबाद से मैनेजमेंट ग्रेजुएट, एक जाने-माने लेखक व विद्वान हैं। 2016 से गोवा मैनेजमेंट संस्थान में सीनियर प्रोफेसर के पद पर कार्यरत हैं। इसके पहले आईआईटी खड़गपुर में प्रोफेसर रहे हैं। उसके पहले भारत पेट्रोलियम में कई साल इंजीनियर के रूप में काम करते हुए, वो एग्जीक्यूटिव डायरेक्टर के पद पर पहुंचे थे और इसके साथ ही वे पेट्रोनेट के मैनेजिंग डायरेक्टर भी रहे हैं। वे एक ऐसे इन्सान हैं जो कॉर्पोरेट बोर्ड रूम में भी बड़े आराम में होते हैं, और वैश्वीकरण, नव-उदारवाद की आलोचना भी कठोरता से करते हैं, जाति-वर्ग द्वंद्व के बारे में बेखौफ विश्लेषणात्मक लेख भी लिखते हैं और मोदी सरकार के भगवाकरण के विरुद्ध बुलंदी से बोलते भी हैं।

अकादमिक, शिक्षक, समीक्षक, इंजीनियर, कॉर्पोरेट एग्जीक्यूटिव और भारत के जाने-माने पब्लिक बुद्धिजीवी, ये हैं आनंद तेलतुंबड़े।

महाराष्ट्र के यवतमाल में जन्मे आनंद मूलतः दलित किसानों के परिवार से आते हैं। शुरुआती पढ़ाई के बाद, आनंद ने मैकेनिकल इंजीनियरिंग की डिग्री हासिल की, फिर आईआईएम अहमदाबाद से मैनेजमेंट की पढ़ाई की और उसके बाद मुंबई विश्वविद्यालय से साइबर्नेटिक मॉडलिंग में पीएचडी हासिल की।

आनंद अक्सर अपने स्कूल के समय का एक किस्सा बताते हैं। 1967 में, जब वह 14 साल के थे, सभी दलित छात्रों ने मिलकर ब्राह्मण बच्चों का स्कूल यूनिफार्म की सफेद टोपी की बजाय आरएसएस की काली टोपी पहनकर आने का विरोध किया। सिनेमा होर्डिंग की पेंटिंग से कमाए पैसे इस्तेमाल करके आनंद ने 100 नीली टोपियां खरीदीं और सभी छात्रों को दीं। जब उनको इस हरकत के लिए हेडमास्टर के पास भेजा गया तो आनंद ने घोषणा की कि जब तक हर छात्र सफेद टोपी नहीं पहनेगा, वो और उनके साथी भी अपनी नीली टोपी नहीं उतारेंगे। फिर काली टोपियां किसी भी छात्र के सर पर कभी नहीं दिखीं।
आनंद तेलतुंबड़े वामपंथी-मार्क्सवादी वर्ग विश्लेषण से सम्बन्ध रखते हैं, लेकिन वे वामपंथियों के वर्ग विश्लेषण में जाति व्यवस्था के सवालों को न लाने पर कड़ी आलोचना भी करते हैं। उनका मानना है कि कम्युनिस्ट और दलित आंदोलनों को एक बुलंद, संगठित क्रांतिकारी ताकत के रूप में एक साथ आना चाहिए, और चूंकि जाति, लिंग और हमारी पहचान से जुड़े मसले एक सामाजिक वास्तविकता हैं, उन्हें भी वर्ग-संघर्ष का हिस्सा होना चाहिए।

आनंद के लेखन और व्याख्यानों में चार अहम मुद्दे उभरकर आते हैं - जाति व्यवस्था पर सतत आक्रमण, भारतीय वामपंथियों की जाति-वर्ग विरोधाभास को सम्बोधित न करने पर आलोचना, अम्बेडकर के बाद के समय में दलित आंदोलनों का बिखरना और ढहना, और अभी की राजनीति का नव-उदारवादी कब्जा जिसमें "अम्बेडकर का भगवाकरण" भी है।

14 अप्रैल 2020, अम्बेडकर की 129वीं जयंती पर आनंद तेलतुंबड़े को एनआईए (राष्ट्रीय जांच एजेंसी) के सामने आत्मसमर्पण करने को कहा गया। उन पर सीपीआई-माओवादी पार्टी (जो एक प्रतिबिन्धत गठन है) के समिति सदस्यों से संपर्क में होने का आरोप लगाया गया, और साथ ही भीमा कोरेगांव मामले में हिंसा भड़काने का भी। इन गंभीर आरोपों का आधार 5 तथाकथित खत हैं जिनमें उनके पहले नाम का ज़िक्र है (जो कि यकीनन भारत में एक आम पहला नाम है)। ये तथाकथित 5 खत अन्य गिरफ्तार किये गए साथियों से बरामद किये गए हैं।

आज आनंद तेलतुंबड़े सलाखों के पीछे हैं, भारत के सबसे बड़े मनगढ़ंत केसों में से एक में मुकदमे के इंतज़ार में, जो आज़ादी से लेकर अभी तक के इतिहास में मानवाधिकार कार्यकर्ताओं की आवाज़ को दबाने की सरकार की सबसे बड़ी कोशिशों का एक वसीयतनामा है। हालांकि वे अभी बन्दी हैं, उनके प्रभावशाली शब्द और लेखन पूरी दुनिया में सुने और पढ़े जाते रहना जारी हैं।

बंदूक –साबिर हका

अगर उन्होंने बंदूक़ का आविष्कार न किया होता
तो कितने लोग, दूर से ही,
मारे जाने से बच जाते.
कई सारी चीज़ें आसान हो जातीं.
उन्हें मज़दूरों की ताक़त का अहसास दिलाना भी
कहीं ज़्यादा आसान होता.

राजकीय कैदी

गौतम नवलखा

“लड़ाई तीन स्तर पर है, एक कानूनी - जिसको सरकार हर कदम पर दबा रही है; एक राजनैतिक - एकजुटता और कैम्पेनों के तरीके से, और आखिरी - व्यक्तिगत स्तर पर जहां परिवार और दोस्त पूरी तरह से दंड प्रक्रिया में उलझे हुए हैं। जिस तरह से वे मामला बनाने की कोशिश कर रहे हैं, हमें अपने संघर्षों को और तैयार करना होगा,” सहबा हुसैन, लेखक और गौतम नवलखा की साथी।

गौतम नवलखा दिल्ली में स्थित पत्रकार, लेखक और लोकतांत्रिक व नागरिक अधिकार कार्यकर्ता हैं। उनका जन्म कोलकत्ता में हुआ और प्राथमिक शिक्षा के बाद, उन्होंने ग्वालियर के सिंधिया स्कूल में अपनी स्कूली शिक्षा पूरी की। कोलकत्ता के सेंट ज़ेवियर्स कॉलेज से ग्रेजुएशन और स्टॉकहोम यूनिवर्सिटी, स्वीडन से मास्टर्स की डिग्री हासिल करने के बाद, 1978 में गौतम जनवादी अधिकार आंदोलनों से जुड़े और पीपल्स यूनियन फॉर सिविल लिबर्टीज एंड डेमोक्रेटिक राइट्स (पीयूसीएल एंड डीआर) का हिस्सा बने, जिसकी स्थापना 1976 में जय प्रकाश नारायण ने की थी। गौतम पीपल्स यूनियन फॉर डेमोक्रेटिक राइट्स (पीयूडीआर), जो पीयूसीएल एंड डीआर से निकलकर एक स्वतंत्र संगठन बना, के संस्थापकों में एक रहे, और तब से पीयूडीआर के एक अत्यंत पुराने और सक्रिय सदस्य रहे हैं। अपने काम के लम्बे सफर में, वे हमेशा ही बहुत ही मामूली तनख्वाह में काम करते रहे, यह कहते हुए कि चूंकि उनका जन्म एक समृद्ध परिवार में हुआ, वे अपनी सीमित क्षमताओं का उपयोग करते हुए जनवादी अधिकारों के लिए काम करने के लिए बाध्य थे। उनके दो सबसे करीबी जज़्बे – जिनको वो प्यार के काम "लेबर्स ऑफ लव" बुलाते हैं - इकनोमिक एंड पोलिटिकल वीकली (ईपीडब्ल्यू) और पीयूडीआर हैं।

पेशेवर रूप में, गौतम ने 1980 से 2012 तक प्रतिष्ठित ईपीडब्लू के सम्पादक मंडल में काम किया। उनके पुराने साथी-सम्पादक सी राम मनोहर ने लिखा था, "गौतम ऐसे मुलाज़िम हैं कि कोई भी प्रकाशन अपने स्टाफ में उन जैसे किसी को पाकर बहुत खुशकिस्मत होते। तकरीबन तीस साल के काम में वे पत्रिका के प्रति हमेशा बेहद वफादार और हिफाज़ती थे। नियमित रूप से कमेंटरी लिखते थे और हमेशा युवा लेखकों की तलाश में रहते थे जो पत्रिका में सहयोग कर सकें।"

1980 से अभी तक, उनका ज़्यादातर लेखन ईपीडब्लू में आया है। 1986 में उन्होंने मशहूर हिंदी साहित्यकार राजेंद्र यादव का मुंशी प्रेमचंद द्वारा शुरू की गयी मासिक पत्रिका 'हंस' को दुबारा शुरू करने में सहयोग किया, और उसके प्रबंध-सम्पादक भी रहे। साथ ही, ईपीडब्ल्यू का हिंदी रूपांतर 'सांचा' मासिक प्रारूप में शुरू किया जो तीन साल प्रकाशित हुई। 1996 और 2002 के बीच उन्होंने दिल्ली के औद्योगिक मज़दूरों के मुद्दों पर बड़े पैमाने पर काम किया। इन श्रमिकों को एम सी मेहता केस में सुप्रीम कोर्ट के आदेश पर "अनाधिकृत औद्योगिक कारोबार" की बंदी के समय पर बड़ी संख्या में काम से विस्थापित किया गया था।

गौतम इंटरनेशनल पीपल्स ट्राइब्यूनल ऑन ह्यूमन राइट्स एंड जस्टिस इन इंडियन एडमिनिस्टर्ड कश्मीर (आईपीटीके) और दी एसोसिएशन ऑफ पेरेंट्स ऑफ डिसअपीयर्ड पर्सन्स (एपीडीपी) के संयोजक और जांच टीम का हिस्सा रहें हैं और सितम्बर 2015 में एपीडीपी और आईपीटीके द्वारा प्रकाशित "स्ट्रक्चर्स ऑफ वायलेंस: द इंडियन स्टेट इन जम्मू कश्मीर" का हिस्सा भी रहें है। गौतम काउंटर इंसर्जेन्सी (जवाबी कार्यवाही) के नाम पर लोगों के खिलाफ हो रहे युद्ध में सत्ताधारियों की नीतियों के कड़े आलोचक रहे हैं। उन्होंने कश्मीर और छत्तीसगढ़ में लोकतांत्रिक अधिकारों और स्वतंत्रता के लिए सक्रिय रूप से लगातार आवाज़ उठायी है, और संघर्षरत इलाकों में जहां सशस्त्र मिलिट्री संघर्ष आम है, विसैन्यीकरण और शांतिपूर्ण समझौतों की हिमायत की है।

उनके एक अन्य दोस्त व साथी, लेखक बर्नार्ड डी' मेल्लो ने लिखा, "भारत के लोकतंत्र का झूठ जो नवलखा अपने पाठक को दिखाते हैं, कश्मीर में साफ झलकता है। नवलखा जैसे मानवाधिकार कार्यकर्ता और पत्रकार होने के लिए बहुत साहस की ज़रुरत है, खासकर सरकारी तंत्र के प्रोपेगेंडा और उनकी तरफ झुकी मीडिया के बारे में जानते हुए।"

एक जाने-माने विद्वान के रूप में गौतम भारत और विदेश के कई महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों में विजिटिंग शिक्षक रहे हैं। राजनैतिक-वैज्ञानिक जिनी लोकनीता ने कहा है, "नवलखा के सभी काम, चाहे वो पोटा, अफस्पा, टाडा जैसे असाधारण कानूनों की आलोचना हो या कश्मीर, उत्तर-पूर्व और मध्य भारत में मिलिटेंसी के कारणों का विश्लेषण हो, लोकतंत्र और बराबरी के वादे को पूरा करने की कोशिश में भारतीय लोकतंत्र में दिख रही दरारों को समझने में उनकी प्रतिबद्धता को दिखाता है।" गिरफ्तारी के समय तक, गौतम न्यूज़क्लिक, एक डिजिटल न्यूज़ पोर्टल, में सलाहकार की तरह काम कर रहे थे। लेकिन फैक्ट फाइंडिंग जांच के दौरान वह सबसे सर्वश्रेष्ठ होते हैं। उन्होंने पीयूडीआर के अनेक साथियों के साथ कई फैक्ट फाइंडिंग रिपोर्टें निकाली हैं।

यूएपीए जैसे गैर-लोकतांत्रिक कानूनों पर व्यापक काम करते हुए, गौतम ने समझा कि किस तरह कानून को राजनैतिक विरोध और असहमति के खिलाफ एक हथियार की तरह इस्तेमाल किया जा रहा है और कैसे व्यवस्थित तरीके से नागरिक अधिकारों पर वार हो रहा है। सैकड़ों आर्टिकल और सम्पादकीय लेखों के साथ-साथ गौतम ने दो किताबें भी लिखी हैं – डेज़ एंड नाइट्स इन द हार्टलैंड ऑफ रिबेलियन (2012) जिसमें माओवादी आंदोलन का विश्लेषण और इतिहास बताया है, और वॉर एंड पॉलिटिक्स (2014) जो हमारे समाज में और माओवादी पीपल्स वॉर के भीतर जंग की भूमिका और मतलब को आलोचनात्मक नज़र से देखती है।

14 अप्रैल 2020 को यूएपीए के आरोप में राष्ट्रीय जांच एजेंसी के सामने आत्मसमर्पण करने से कुछ घंटे पहले गौतम, जो हमेशा ही गीत और कविता के प्रेमी रहे हैं, ने लिखा:

"मेरे अपने और मेरे सभी सह-आरोपियों को लेकर मेरी उम्मीद एक त्वरित और निष्पक्ष सुनवाई पर टिकी हुई है। यही मुझे अपना नाम पाक-साफ करने और आज़ाद चलने में सक्षम बनायेगा, साथ ही साथ खुद की कुछ आदतों से छुटकारा पाने के लिए जेल में समय का सदुपयोग करवायेगा।"

राजकीय कैदी

हेनी बाबू

2002 में उन्होंने अंग्रेज़ी और विदेशी भाषा विश्वविद्यालय, हैदराबाद में असिस्टेंट प्रोफेसर के पद पर अपना शिक्षण का काम शुरू किया। 2007 तक वे वहां दूरस्थ शिक्षा विभाग में कार्यरत थे। मंडल आयोग के क्रियान्वयन के बाद उच्च शिक्षा के क्षेत्र में ओबीसी श्रेणी में ईफलू में आने वाले पहले लोगों में से एक थे।

हेनी बाबू (जन्म: 16 अगस्त 1966) दिल्ली विश्वविद्यालय के अंग्रेज़ी विभाग में एसोसिएट प्रोफेसर हैं। वे भाषाविद हैं, जाति और भाषा के विद्वान, और दिल्ली विश्वविद्यालय में आरक्षण और अन्य सामाजिक न्याय के संघर्षों में सक्रिय रहे हैं।

हेनी बाबू मोप्लाह जाति के एक मालाबार मुसलमान हैं, जो की केरल में अन्य पिछड़ी जातियों की श्रेणी में आती है। केरल में उन्होंने अपनी स्कूली और स्नातक शिक्षण की पढ़ाई की, और जूनियर रिसर्च फेलोशिप मिलने के पश्चात, इंग्लिश और फॉरेन लैंग्वेज विश्वविद्यालय से भाषा-विज्ञान में अपनी डॉक्टरेट की पढ़ाई करने के लिए हैदराबाद चले गए।

1995 में, पीएचडी अध्ययन के दौरान, द्रविड़ लिंग्विस्टिक्स एसोसिएशन, तिरुवनंतपुरम द्वारा आयोजित ऑल इंडिया द्रविड़ियन लिंग्विस्टिक्स कॉन्फ्रेंस में शोध विद्वाननुमा प्रस्तुत किये गए पेपर पर उन्होंने 'सर्वोत्तम युवा भाषाविद' का इनाम जीता। दिसम्बर 1997 से नवम्बर 2000 के दौरान उन्हें डॉयचे फोर्शचुंगसैमिंसचफ्ट (डीएफजी) द्वारा ग्रैडिएरटेन्कोलेग "युनिवर्सलिट एंड डाइवर्सिटेट: स्प्राचिल्के स्ट्रक्टुरेन एंड प्रोज़ेसे" के अंतर्गत लेइप्ज़ेग और फ़्रिएदरिक-शिल्लर-यूनिवेर्सेटिट जेना में फेलोशिप मिली। दिसम्बर 2000 से नवम्बर 2001 के दौरान वे कोंतान्ज़ विश्वविद्यालय में सहायक संशोधक के तौर पर कार्यरत रहे।

2002 में उन्होंने अंग्रेज़ी और विदेशी भाषा विश्वविद्यालय, हैदराबाद में असिस्टेंट प्रोफेसर के पद पर अपना शिक्षण का काम शुरू किया। 2007 तक वे वहां दूरस्थ शिक्षा विभाग में कार्यरत थे। मंडल आयोग के क्रियान्वयन के बाद उच्च शिक्षा के क्षेत्र में ओबीसी श्रेणी में ईफलू में आने वाले पहले लोगों में से एक थे। 2008 में दिल्ली विश्वविद्यालय में अंग्रेज़ी विभाग में एसोसिएट प्रोफेसर की नौकरी पर वे नई दिल्ली स्थानांतरित हुए।

भाषाविज्ञान हेनी बाबू के शोधकार्य का प्रमुख क्षेत्र रहा हैं; इसके अंतर्गत उन्होंने प्राकृतिक भाषाओं के वाक्य-विन्यास और अर्थ-सम्बन्धी विज्ञान में विशेषज्ञता हासिल की है। भाषाविज्ञान को छोड़कर, उनकी दिलचस्पी भाषा की विचारधारा, भाषा की नीतियां और भाषा की राजनीति; हाशियाकृत भाषाएं, भाषागत पहचान और सामाजिक न्याय इन विषयों में रही है।

दिल्ली विश्वविद्यालय में आरक्षण के सही अमल के लिए वे काम करते आये हैं। एकेडमिक फोरम फॉर सोशल जस्टिस के प्रमुख सचिव होते हुए, उन्होंने दिल्ली विश्वविद्यालय के 30 कॉलेजों से ओबीसी विद्यार्थियों के लिए आरक्षित सीट की संख्या और भर्ती के बीच की बड़ी खाई को उजागर किया। दिल्ली विश्वविद्यालय में अनुसूचित जाति/जनजाति के प्रवेश की प्रक्रियाओं में अपनाए जा रहे भेदभावपूर्ण व्यवहारों के विरुद्ध एक सफल मुकदमा कायम किया।

दिल्ली विश्वविद्यालय में चार-वर्षीय पूर्वस्नातक कार्यक्रम के विरुद्ध शिक्षकों के आंदोलन में वो सक्रिय थे। एससी/एसटी/ओबीसी शिक्षकों द्वारा 200 पॉइंट रोस्टर के क्रियान्वयन की मांग के लिए छेड़े गए आंदोलन में भी वे पूरी तरह से शामिल थे।

हेनी बाबू दलित बहुजनों की मुक्ति के लिए अंग्रेज़ी भाषा को एक हथियार मानने वाले समर्थक भी थे, और भारत में भाषा नीतियों की मुश्किलों के बारे में उन्होंने लिखा और बोला है।

बंदी पक्षी अभी भी गा सकते है – फादर स्टैन स्वामी

सबसे पहले, इन सौ दिन के कैद के दौरान इतने सब लोगों का मेरे तरफ हौसला और साथ को मैं बहुत ज़्यादा मूल्यवान मानता हूँ| कई बार, इस एकजुटता की खबर ने मुझे बहुत ताकत और सहारा दिया है, खासतौर जब जेल में केवल अनिश्चितता ही एक बात है जो सुनिश्चित है| यहाँ ज़िंदगी एक-एक दिन करते हुए जी जाती है|

गए 100 दिनों में एक और ताकत का कारण रहा है, विचाराधीन कैदियों की दुर्दशा को देखना| इनमें से ज़्यादातर लोग आर्थिक और सामाजिक कमज़ोर तबकों से आते हैं| ऐसे कई गरीब विचाराधीन कैदियों को यह नहीं पता कि उनके ऊपर क्या आरोप लगे हैं; अपना आरोप पत्र नहीं देखा है और बिना कानूनी या किसी भी तरह के सहयोग के सालों से बस जेल में हैं| एक तरह से ज़्यादातर सभी विचाराधीन कैदियों को एक न्यूनतम ज़िंदगी जीनी पड़ती हैं, चाहे वो गरीब हों या अमीर| इसके चलते एक तरह का भाईचारा और समुदायीकरण का भाव आ जाता है, जहाँ इस विपत्ति की घड़ी में भी एक दूसरे तक पहुँचना संभव होता है|

दूसरी तरफ. हम 16 सह अभियुक्त क दूसरे को मिल नहीं पाए हैं, क्योंकि हम अलग अलग जेलों में, या एक ही जेल के अन्दर भी अलग 'सर्किल' में रखे गए हैं| लेकिन हम फिर भी कोरस में गाते हैं| एक कैद पंछी फिर भी गा सकता है|

राजकीय कैदी

रमेश गायचोर

“हम बस गाते हैं। एक गीत में कुछ भी ठोस नहीं है। सो हमारे गानों की वो उत्साहवर्धक शक्ति ही पुलिस को झकझोर देती होगी,” 34 वर्षीय रूपाली जाधव कहती हैं, जो 2009 में मंच में शामिल हुई थीं।

जब 2002 में गायचोर कबीर कला मंच में शामिल हुए, तो वह वाडिया कॉलेज में कॉमर्स के छात्र थे, लेकिन उन्होंने अपना ज़्यादातर समय नाटक लिखने और सांस्कृतिक गतिविधियों में भाग लेने में बिताया।

"वह स्कूल में एक बहुत ही होशियार छात्र था और साथ ही कविता लिखना और नाटक करना पसंद करता था। वह हमेशा सामाजिक कार्यों में भी रुचि रखता था, गरीबों के लिए अच्छा करने में।" उनके पिता मुरलीधर गायचोर ने बताया।

कबीर कला मंच गायचोर के लिए अपने जुनून को संगठित करने का एक अवसर था। एक कलाकार के रूप में, उनके सहयोगियों ने उन्हें नुक्कड़ नाटकों के लेखन और निर्देशन में विशेष रूप से सक्रिय पाया है।

"शुरुआती सालों में, 2002 से 2010 के बीच, कबीर कला मंच हिंदू-मुस्लिम एकता और भाईचारे पर बहुत काम करता था, और वे हर दिन अभ्यास करते थे," रूपाली जाधव, जो 2009 में मंच में शामिल हुई थीं, ने बताया। समूह को एक शुभचिंतक द्वारा मुफ्त में एक ऑफिस की जगह दी गयी थी, जहां वे मोमबत्ती की रोशनी में अभ्यास करते थे क्योंकि उस स्थान पर बिजली नहीं थी।

2006 के खैरलांजी नरसंहार, जिसमें महाराष्ट्र के एक गांव के उच्च जाति के सदस्यों ने एक दलित परिवार के चार सदस्यों की हत्या कर दी थी, के बाद से कबीर कला मंच ने जातिवाद और जाति आधारित उत्पीड़न के बारे में गायन पर ज़ोर देना शुरू कर दिया था। "रमेश मराठा समुदाय से आते थे, लेकिन उनके दलित समूहों से दोस्त थे, जिनके ज़रिए उन्हें बाबासाहेब अम्बेडकर के संदेश से परिचित कराया गया था," रामदास उन्हले, जो 2009 में समूह में शामिल हुए थे, ने बताया।

चूंकि मंच ने अपने प्रदर्शन के माध्यम से बहुत अधिक पैसा नहीं कमाया, इसलिए गायचोर ने कई सालों तक अस्पताल के क्लर्क और एक व्याख्याता के रूप में अंशकालिक नौकरी भी की। कबीर कला मंच के सदस्यों पर माओवादियों के साथ सम्बन्ध रखने के आरोप लगने के बाद यह काम रुक गया, और गायचोर ने एक विचाराधीन कैदी के रूप में जेल में तीन साल बिताए।

कबीर कला मंच के साथ गायचोर ने जो काम किया है उसमें जैतापुर में परमाणु ऊर्जा संयंत्र के खिलाफ विरोध प्रदर्शन और 2015 में मारे गए तर्कवादी कार्यकर्ता गोविंद पानसरे के जीवन उत्सव का गीत शामिल है।

अब जबकि गायचोर को ज़मानत पर रिहा होने के तीन साल बाद एल्गार परिषद मामले में फिर से गिरफ्तार किया गया है, उसके माता-पिता यह समझने की कोशिश कर रहे हैं कि उसे पुलिस ने क्यों निशाना बनाया। "हमारे बेटे और उसके समूह ने दूसरों के लिए सिर्फ अच्छा काम किया है, लेकिन मुझे लगता है कि कुछ लोग ऐसा होना पसंद नहीं करते हैं। हम पुलिस और सरकार पर बहुत गुस्सा हैं।" मुरलीधर गायचोर ने कहा।

चुनौती अभी भी है| एक तरफ बहुत बड़ी ताकतें हैं: पैसा, राजनैतिक सत्ता, प्रमुख मीडिया| हमारी तरफ है दुनिया के लोग, और दो ताकत जो हथियार और पैसे से भी बड़ी है: सच्चाई|

सच्चाई की खुद की ही ताकत होती है| कला की अपनी ही ताकत होती है| वो पुराना पाठ – कि हर एक चीज़ जो हम करते हैं, उसका मायना रहता है – अमरीका और सभी जगह के लोगों के संघर्ष का अर्थ है| एक परचा एक क्रांति छेड़ सकता है| सत्याग्रह (Civil disobedience) लोगों को सोचने के लिए खारोचता है, जब हम एक दूसरे के साथ जुड़ते हैं, जब हम शामिल होते हैं, जब हम खड़े होते हैं और इकट्ठे बोलते हैं, हम एक ऐसी ताकत बना सकते हैं जो कोई भी सरकार दबा नहीं सकती| हम एक सुन्दर देश में रहते हैं| लेकिन ऐसे लोग, जिनको इंसानी जीवन, न्याय और आज़ादी के लिए कोई इज़्ज़त नहीं है, उन्होंने इस पर अपना काबू कर लिया है| अब हम सब के ऊपर है कि हम इसको वापस लें|

होवार्ड ज़िन्न

राजकीय कैदी

सागर गोरखे

“मेरा बेटा अम्बेडकर और सावित्रीबाई [फुले] के बारे में गाता है, वह गलत कैसे हो सकता है? उन्होंने गलत तरीके से उस पर नक्सलवादी होने का आरोप लगाया है, लेकिन मैं डरने वाली नहीं हूं, क्योंकि मुझे पता है कि उसे न्याय मिलेगा।”

एक गरीब दलित परिवार के तीन बच्चों में से एक, 32 वर्षीय सागर गोरखे का पुणे में एक अस्थायी बचपन था, जहां उसके माता-पिता निर्माण श्रमिक, सुरक्षा गार्ड और घरेलू कामगार के रूप में नौकरी करने के लिए उपनगर से उपनगर घूमते रहते थे। स्कूल के बाद, वह शहर की कासेवाड़ी झुग्गी में रहने लगे और बाबासाहेब अम्बेडकर कॉलेज में समाजशास्त्र का अध्ययन शुरू किया। तभी 2004 में वह कबीर कला मंच से भी जुड़े।

रूपाली जाधव, जो कि गोरखे की साथी हैं, का कहना है कि "वह हमेशा गीत गाना और कविता कहना पसंद करते थे, और कबीर कला मंच में उन्होंने महसूस किया कि गीतों का उपयोग लोगों के अधिकारों और अन्याय के बारे में बात करने के लिए भी किया जा सकता है। कॉलेज की फीस का भुगतान करने के लिए एक छात्र के रूप में उन्होंने स्वीपर और कार क्लीनर के रूप में काम किया, लेकिन बाद में उन्होंने कबीर कला मंच के साथ पूर्णकालिक काम किया।"

2013 से 2017 के बीच अपने तीन साल की जेल के दौरान, गोरखे, गायचोर और मंच के अन्य सदस्यों ने अपने काम को जीवित रखा, अपनी स्थिति और देश में कलाकारों को जिस तरह से निशाना बनाया जा रहा है के बारे में गाने का एक एल्बम जारी किया।

गोरखे की मां सुरेखा, जो अब एक अस्पताल में सेविका के रूप में काम करती हैं, 2013 से दूसरी बार अपने बेटे की गिरफ्तारी से परेशान और आहत हैं। "मेरा बेटा अम्बेडकर और सावित्रीबाई [फुले] के बारे में गाता है, वह गलत कैसे हो सकता है? उन्होंने गलत तरीके से उस पर नक्सलवादी होने का आरोप लगाया है, लेकिन मैं डरने वाली नहीं हूं, क्योंकि मुझे पता है कि उसे न्याय मिलेगा।" उन्होंने कहा।

किस किस को कैद करोगे? – दीपक डेंगले

किस किस को कैद करोगे?
लाखों हैं मुक्ति के पंछी, कैद करोगे किसको
लेकर पिंजरा उड़ जाएंगे खबर न होगी तुझको
इस पिंजरे की सलाखों का लोहा
हमने ही निकाला है
ये लोहा पिघलाने हमने अपना खून उबाला है
लोहा लोहे को पहचानेगा, फिर क्या होगा समझो
लेकर पिंजरा उड़ जाएंगे खबर न होगी तुझको
इस पिंजरे की दीवारों में हमने पसीना बहाया है
ईंट बनाने, सीमेंट बनाने मिट्टी को भी भिगोया है
मिट्टी कभी गद्दार न होगी, क्या बतलायें तुझको
लेकर पिंजरा उड़ जाएंगे खबर न होगी तुझको
इस पिंजरे के पुर्जे पुर्जे हमें बताते अपने किस्से
कितने मज़दूर दफन हुए हैं इस पिंजरे
के नींव के नीचे
वो मज़दूर हैं साथ हमारे, कौन रोकेगा हमको
लेकर पिंजरा उड़ जाएंगे खबर न होगी तुझको
कैद में डालो, फांसी लगा दो, हंटर से
चमड़ी भी निकालो
न्याय के रास्ते चल पड़े हैं, बांध
लगा लो, कांटे बिछा लो
कितना ज़ुल्म करेगा ज़ालिम, थक जाना है तुझको
लेकर पिंजरा उड़ जाएंगे खबर न होगी तुझको

राजकीय कैदी

ज्योति जगताप

“ज्योति हमें बताती थी कि राज्य हमारी आवाज़ को दबाना चाहता है क्योंकि हम लोगों के लिए बोलते हैं,” 45 वर्षीय ढेंगले ने कहा, जो 2004 में कबीर कला मंच में शामिल हुए, और पुणे में एक ऑटोमोबाइल मैकेनिक हैं। “अगर हम अभी थककर छोड़ दें, तो हम वही कर रहे होंगे जो राज्य चाहता है, वो बोलती थी| चाहे जो भी हो, हमें उन्हें दिखाना होगा कि हम झुके नहीं हैं,” बोलते हुए हमें वो (ज्योति) प्रेरित करती थी|

ज्योति जगताप बचपन से अपने पिता, जो कि मुंबई मिल में एक मज़दूर थे, के समतामूलक और उदारवादी सोच से प्रभावित थीं। बाद में उनके पिता गांव लौटकर खेती के काम में लग गए थे। अपने युवा दिनों में ज्योति राष्ट्र सेवा दल, जो पुणे ज़िले के सासवड शहर में एक समाजवादी युवा समूह है, की सक्रिय कार्यकर्ता बनीं। 1941 में साणे गुरूजी, एस एम जोशी और विभिन्न सामाजिक स्वतंत्रता सेनानियों ने यह समूह स्थापित किया था। यहां उन्होंने धर्मनिरपेक्षता और लिंगभेद के मसलों पर कई नाटक किए, और सामजिक कार्यकर्ता के बतौर महिलाओं के मुद्दों को उठाती रहीं। तब वे सासवड में मनोविज्ञान में स्नातक की पढ़ाई कर रही थीं।

2007 में, ज्योति ने एसपी कॉलेज से मनोविज्ञान में मास्टर डिग्री करने के लिए पुणे शहर का रुख किया और कबीर कला मंच के साथ जुड़ने में देर नहीं लगाई। 2002 के गुजरात नरसिंहार के बाद कबीर कला मंच स्थापित हुआ था। पुणे के कुछ युवाओं का यह समूह जातिवाद, हिंदुत्व, गैर-बराबरी और राज्य दमन के विरुद्ध और अम्बेडकर की विचारधारा के फैलाव में पुणे की बस्तियों में गीत गाता था।

कबीर कला मंच के माध्यम से ज्योति की शहरी बस्तियों की परिस्थितियां और जाति की समझ बनी। वे माली समुदाय से थीं, जो कि अन्य पिछड़ा वर्ग (ओबीसी) में आता है, पर नज़दीकी से वे इसको नहीं समझी थीं। "कबीर कला मंच में उन्होंने पहली बार देखा कि आम जनता की भाषा में आप कितनी सुन्दर बातें बोल सकते हो। और आपको जनता की भाषा बोलनी चाहिए। जब मै पहली बार स्टेज पर गयी, मैं सोच रही थी कि क्या ये गाने लोगों को छूते हैं, क्या कुछ प्रतिक्रिया मिलती है...फिर मैंने देखा, हां, यह ही लोगों की आवाज़ है।"

उसके साथी बताते हैं, "वे बहुत मज़बूत महिला हैं और उनमें हमेशा से ही बेहतरीन नेतृत्व के गुण मौजूद रहे हैं।" जेल जाते-जाते दोस्तों ने सलाह दी कि जेल में भी तुम बहुत लोगों को हिम्मत देती रहोगी। जब 2013 में कबीर कला मंच के कार्यकर्ताओं को जेल जाना पड़ा, तब ज्योति ने मंच को जीवित रखने के लिए लगातार मेहनत की। पहले वे कोरस में ही गाना पसंद करती थीं, और नाटक निर्देशन में ज़्यादा अपनी भूमिका देखती थीं। लेकिन गिरफ्तारियों के बाद, आगे आकर लोगों से बात करने में भी वे ज़िम्मेदारी लेने लगीं।

प्रदर्शन शुरू करने से पहले, ज्योति के खुद के बोल रहे हैं, "हम ग्वालियर घराने, या जयपुर या आगरा घराने से प्रशिक्षित संगीतकार नहीं हैं, हम बस्तियों, कारखानों और खेत-मज़दूर घरानों के मेहनतकश वर्ग के युवा हैं। हम पूरी निपुणता से सुर नहीं गा सकेंगे, या बिल्कुल श्रेष्ठ यंत्र नहीं बजायेंगे, लेकिन अगर आप हमारे शब्दों को सुनें, तो मुझे विश्वास है कि आपको हमारी बातों में दिलचस्पी होगी।"

कोलसे पाटिल, महाराष्ट्र उच्च न्यायलय से सेवामुक्त जज, का भी कहना रहा है, "छह साल पहले, सतारा में एक पब्लिक मीटिंग में मैंने इन्हें पहली बार सुना। सामाजिक और आर्थिक अन्याय के विरुद्ध उनके गीत इतने प्रभावी थे कि मैं रोने लगा। गानों में उनकी जाति की पीड़ा पूरी झलक जाती थी। मैंने उनको अपने घर बुलाया और तब से हम लोग हर महीने मिलते ही थे।"

2018 में आयोजित एल्गार परिषद में कोलसे पाटिल और कबीर कला मंच के साथियों जैसे अनेकों समतामूलक समाज के सपनीले लोग इकट्ठे जुड़े। आयोजन के पहले मराठी न्यूज़ चेनल में ज्योति ने यह साक्षात्कार दिया था, "गए 3-4 सालों में हालात बहुत खराब हो गए हैं। सत्ता में आने के बाद मनुवादी सोच और मज़बूत होती गयी है। जातिवाद और धर्म के आधार पर नफरत बड़े पैमाने पर बढ़ रही है। इसलिए महाराष्ट्र के 200-250 सक्रिय

संगठनों ने तय किया कि उन्हें एक बैनर तले आकर एक व्यवस्थित तरीके से अपना विद्रोह दिखाना चाहिए।" कबीर कला मंच ने इस आयोजन में अपने गीत प्रस्तुत किये।

2017 तक ज्योति ने कबीर कला मंच में पूर्णकालिक रूप से काम किया। उसके बाद वह एक गैर-लाभकारी संगठन के साथ काम करने लगीं, जो किशोरियों के साथ काम करता है। पिछली साल ज्योति, जो अब 33 की हैं, ने अपना स्वयं का परामर्श केंद्र खोलने के उद्देश्य से मनोविज्ञान के क्षेत्र में अपना अध्ययन वापस शुरू किया। अभी काउन्सलिंग के एक उच्च कोर्स में पढ़ाई शुरू की थी, और तर्कसंगत भावनात्मक व्यवहार थेरेपी नामक विशेष थेरपी के अध्ययन में लगी हुई थीं।

राजकीय कैदी

फादर स्टैन स्वामी

“वह संविधान के पथप्रदर्शक हैं।”
फादर स्टैन स्वामी के साथी

फादर स्टैन स्वामी मूलत: तमिलनाडु के त्रिची से हैं। वे एक युवा पादरी के रूप में झारखंड आए थे ताकि आदिवासी लोगों की समस्याओं को समझ सकें। दो साल तक वे झारखंड के पूर्वी सिंहभूम ज़िले के एक आदिवासी गांव में रहे। इस दौरान उन्होंने आदिवासियों के सामाजिक-आर्थिक हालात, उनके समुदायों व मूल्यों, और शोषण की उस व्यवस्था पर शोध किया जो उन्हें जकड़े हुए है। बैंगलुरु के इंडियन सोशल इंस्टीट्यूट में 15 साल सेवा देने, जिस दौरान 10 साल वे इंस्टीट्यूट के निदेशक भी रहे, के बाद वे एक बार फिर झारखंड लौटे। झारखंड में वे झारखंड ऑर्गेनाइज़ेशन फॉर ह्यूमन राइट्स (जोहार) से जुड़ गए और झारखंडी ऑर्गेनाइज़ेशन अगेन्स्ट युरेनियम रेडिएशन (जोअर) के साथ भी काम किया। जोअर युरेनियम कॉर्पोरेशन ऑफ इंडिया लिमिटेड की वजह से हो रहे पर्यावरण विनाश व निर्धनीकरण के विरुद्ध काम करता है। वे रांची में बगाइचा केंद्र की स्थापना में भी शामिल रहे – यह आदिवासी युवाओं के लिए एक प्रशिक्षण केंद्र है और साथ ही हाशियाकृत आबादियों की कार्य योजनाओं पर अनुसंधान व सहयोग का केंद्र भी है।

झारखंड में फादर स्टैन के काम के दो प्रमुख क्षेत्र रहे और दोनों ने ही उन्हें केंद्र सरकार द्वारा रक्षित शक्तिशाली हितों के खिलाफ खड़ा कर दिया। उनके काम का एक महत्वपूर्ण हिस्सा उस कॉर्पोरेट-राज्य गठबंधन को चुनौती देना रहा है जो आदिवासियों के पारंपरिक स्रोतों की लूट-खसोट करता है। झारखंड एक खनिज समृद्ध प्रांत है। देश के 40 प्रतिशत खनिज संसाधन यहीं हैं। फिर भी इसकी 39 प्रतिशत आबादी, ज़्यादातर आदिवासी, गरीबी रेखा से नीचे जीती है। प्रचुर प्राकृतिक संसाधनों के शोषण की दौड़ में अक्सर राज्य की मशीनरी आदिवासियों के खिलाफ खड़ी होती है। आदिवासियों को विस्थापन और निर्धनीकरण का डर सताता है।

इस संदर्भ में फादर स्टैन स्वामी ने उन कानूनों की पैरवी की जो भारत के संविधान की पांचवी अनुसूची के धरातल पर टिके हैं। इनके अंतर्गत आदिवासी क्षेत्रों को कुछ स्वायत्तता व स्व-शासन का आश्वासन दिया गया है। उन्होंने चिन्ता व्यक्त की कि झारखंड में पेसा कानून (पंचायती राज – अनुसूचित क्षेत्रों में विस्तार अधिनियम, 1996) सम्बन्धी नियम ही नहीं हैं, जिसकी वजह से इस अधिनियम का क्रियान्वयन असंभव हो गया है। उन्होंने विभिन्न सरकारों पर संजीदगी के अभाव का आरोप लगाया क्योंकि एक के बाद एक सरकार ने वन अधिकार कानून के बुनियादी मुद्दों को नज़रअंदाज़ किया। यह कानून हज़ारों आदिवासियों और अन्य वनवासियों को पट्टे की सुरक्षा दे सकता था। फादर स्टैन स्वामी ने कई छोटे-बड़े संघर्षों को पूरा समर्थन दिया। वे झारखंड में पथलगढ़ी आंदोलन के मुखर समर्थक थे – यह आदिवासी समुदाय के आत्मसम्मान का आंदोलन था। इसने भारत के संविधान और सुप्रीम कोर्ट के कुछ फैसलों से प्रेरणा लेकर अपने गांवों में आदिवासी नियंत्रण की मांग रखी थी। लेकिन राज्य सरकार ने इस आंदोलन को गैर-कानूनी घोषित कर दिया और फादर स्टैन तथा अन्य पर राजद्रोह के आरोप लगाए गए। चुनाव उपरांत नई सरकार ने ये मुकदमे वापस लेने का आश्वासन दिया, जिससे पता चलता है कि ये आरोप राजनीति से प्रेरित थे।

हाल के वर्षों में फादर स्टैन का दूसरा संजीदा सरोकार उन आदिवासी युवाओं से रहा है जो झारखंड के जेलों में इस मनगढ़ंत आरोप में बन्दी हैं कि वे नक्सल गतिविधियों से जुड़े रहे हैं। अपनी पुस्तक "जेल में बंद कैदियों का सच" के लिए किए गए उनके अनुसंधान से पता चला कि जिन 3000 बन्दियों से सीधे या परिवार के ज़रिए साक्षात्कार किए गए थे, उनमें से 98 प्रतिशत का नक्सल गतिविधियों से कुछ लेना-देना नहीं था लेकिन उन्हें रिहाई के इन्तज़ार में बरसों जेल में बिताने पड़े थे। इस अनुसंधान के आधार पर उन्होंने झारखंड हाई कोर्ट में जनहित याचिका के माध्यम से ऐसे युवाओं को अंतरिम ज़मानत, प्रकरणों के त्वरित निपटारे की अपील की और एक

जांच आयोग के गठन का आव्हान किया जो झारखंड के समस्त 24 ज़िलों में इस मुद्दे पर समग्र तथ्यांवेषण करे। फादर स्टैन स्वामी ने राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग के समक्ष भी ऐसे मामलों की शिकायत दर्ज की जहां कई साधारण गांववासियों को न्यायेतर ढंग से मार दिया गया अथवा दबाव डालकर उनसे 'आत्म-समर्पण' करवाया गया।

जेलों में बन्द आदिवासी युवाओं में उनकी रुचि व एकाग्रता का ही परिणाम था कि उन्होंने मध्य भारत के विभिन्न राज्यों में झूठे आरोपों में बंद आदिवासी कैदियों के साथ काम कर रहे वकीलों और कार्यकर्ताओं के साथ 2015 में एक बैठक का आयोजन किया था। इस बैठक का आयोजन अधिवक्ता सुधा भारद्वाज के साथ संयुक्त रूप से किया गया था और इसी में पर्सीक्यूटेड प्रिज़नर्स सॉलिडेरिटी कमिटी (पीपीएससी) का जन्म हुआ था। यह समिति पश्चिम बंगाल, छत्तीसगढ़, झारखंड व ओड़ीशा के जेलों में बंद आदिवासियों और दलितों के मुद्दों पर काम करती है।

जेल से पत्र

इनमें से कई अंश नज़दीकी परिवार सदस्यों को लिखे गए पत्रों में से लिये गए हैं, और उनकी इजाज़त से यहां प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

कला: अरुण फ्रेरा; कलर्स ऑफ द केज

इन विशाल दिवारों के पीछे - महेश राऊत

सभी साथियों को हुल जोहार,
इस बढ़ते फांसीवादी दौर में न्याय और अधिकार के लिए संघर्ष के कड़ी (की) में आप जिस कार्यक्रम का आयोजन कर रहे है उसके लिए शुभकामनायें।

इस समय वहाँ हरियाली छायी थी,
शायद अभी भी होगी,
जहाँ से उठाकर मुझे
फेंक दिया है यहाँ सलाखों के पीछे
लगता है कभी,
कर दिया गया हूँ 'विस्थापीत',
पर, शर्मसार होता हूँ
उनसे तुलना कर, जिन्हें
इस महान देश के 'विकास' की
किमत चुकानी पड़ी है
'विस्थापीत' होकर.
उसके पुरखों ने भी चुकाई थी,
अब बारी उसकी है...

कोर्ट पेशी से वापसी वक्त
गेट पर होती अमानवीय तलाशी से
महसुस होता हूँ अपमानीत,
पर, कम है वह,
हम पर लादे गये उन्हीं ऐतिहासिक अपमानों से
जब हमें नग्न किया गया, छिनकर
हमारे जंगल, पहाड़
हमारी जमीन, खेत
हमारी संस्कृती, परंपरा,
हमारा इतिहास
हमारे भगवान....

भगवान से याद आया,
तुमने तो भगवान के नाम पर
जला दिए हैं घर और लोग.
उसके नारे पर,
कर रहे है कत्लेआम, ट्रेनों और रस्तों पर..

पढ़ रहा हुँ खबर, की
उस भगवान को अब
अदालत करवा रही है जगह.
पर, उसी समय,
तुम्हे चढ़ा रहे है बली
नियमगिरी राजा,
ठाकुरदेव,
और ऐसी कितनों की..
तुम्हारी नजर में,
कोई अस्तीत्व नहीं है
हमारें तरह, हमारें 'भगवान' का...

'भत्ते' की थाली लिए,
यादें दौड़ती हैं दिवारों से बाहर...
मछली, टेंभरु, ताड़ी, गोर्गा,
महुआ की याद में...जिन्हें
पाया उन्हीं जंगलों से
जिन्हें हमारे पुरखों ने बचाया
और हम ने संवारा.
जिन पर टिकी है तुम्हारी नजर आज.
सुना है,
होड़ लगाई है तुमने
अंग्रेजी जुल्मकारो से
आगे निकलने की...
कागजों पे रखकर
वन अधिकार, पेसा, ग्रामंसभा...
अब तो तुम
जंगल बचाने वालों पर ही,

छूट दे रहे हो गोली चलाने की
और,
'मेक इन इंडिया' के नाम
बंटवारा किया है जंगलों का हमारे.
अब पतवार खाली है,
जंगल जाना मना है...

कभी, सुन्न होता हुं यह सोच कर
कभी, अकेला महसुस करता हूँ.
'सेल' में बंद शाम कि ख़ामोशी
हिंसा पर उतारू लगती है..
यादें, उन जगहों की, पलों की
जहाँ प्यार मिला,
यादें, जिन्हें प्यार करते है
जो हमें प्यार करते है उनकी...
जैसे उस साथी कि तरह
जो पड़ा है फूटपाथ पर इस शहर के
गांव से 'विस्थापीत' होकर
अपने गांव, जंगल, नदी,
परिवार, समाज को याद कर रहा है.
उसने शहर में पाया की
नहीं है वह अकेला
यहाँ और भी है 'विस्थापीत'
ब्राम्हणवाद के पंजो में
जमीन, इज्जत, शिक्षा से दुर
दलित, महिलाएं
है 'ऐतिहासीक विस्थापीत'
'स्मार्ट सिटी' की चमक के तले
जलाना, गिराना बस्तियों का,
यहाँ मजदुर 'विस्थापीत'..
दबाया गया उनके विरोधी सुरों को
जैसे हुआ उसके गांव में भी
कोई बेरहम पीटा गया
कोई गिरफ्तार
कोई जमीन के अंदर
वो उस 'मुठभेड़' का शिकार घोषीत हुआ
जिसे 'फर्जी' कहना मना है...

वह पड़ा है रात को उस फुटपाथ पर
मां-बाप-बहन उसके, जो लड़े विरोध में ,
कब्र में पड़े है.
यहाँ, मैं कभी अँधेरा ना होने वाले सेल में
जगा पड़ा हूँ...
इन्हीं सलाखों के पीछे से,
जंगल को हमारे खून में तब्दील
होता देख रहा हूँ...

तभी बेल बजा जेल के घंटे का,
जैसे उन्हीं लड़ाइयों का आगाज हो,
जो आज भी लड़ी जा रही हैं,
अपने अधिकार, स्व-सम्मान के लिए
इस पूंजीवादी, विस्तारवादी 'विकास' के खिलाफ
इस असभ्य, अमानवीय, हिंसक, क्रूर 'मुख्य
धारा' के खिलाफ

इन विशाल दिवारों के पिछे से
आहट सुन रहा हूँ
ढोल-नगारों के बजने की,
'जल-जंगल-जमीन' के नारे की,
फिर एक 'भूमकाल', 'उलगुलान' की...

इन बंद सलांखों के पिछे... मैं एक 'मुक्त'
विस्थापीत ...

'...जब कैद से कैदी छुटेंगे...' - सुधीर ढवले

'एक विद्रोही दिल की धड़कन'

राष्ट्र का मतलब है, उस राष्ट्र में रहने वाले लोग; कुछ लोग, लोगों द्वारा चुनी गई सरकार के खिलाफ हमेशा आवाज़ उठाते हैं। मान लीजिये वो दूसरों को भी अपनी तरह सोचने के लिए उकसाते हैं। यह दलील कि ये सिर्फ सरकार के खिलाफ बगावत नहीं बल्कि देशद्रोह है, भारत और कई और देशों के कानूनों से मेल नहीं खाती।

जब तक ये साबित नहीं हो जाता कि इस तरह का 'भड़काना' या 'प्रवृत्त करना' किसी ऐसी कृति या अभिव्यक्ति के कारण हुआ है, जिसका मकसद ही लोगों को उस राष्ट्र के खिलाफ उकसाने और राष्ट्रविरोधी कार्य करवाने का है, तब तक उसे 'देशद्रोह' नहीं कहा जा सकता। मगर कई बार कोर्ट इस विचार को नहीं मानते हैं। और आज के दौर में, इस देश में, सरकार और पुलिस व्यवस्था दोनों ही, ऐसी अभिव्यक्तियों को 'देशद्रोही' बताकर किसी को भी जेल में डाल रही है।

1 जनवरी 2018। जिसमें पेशवा राज को हराया गया था, उस भीमा कोरेगांव के ऐतिहासिक संघर्ष को 200 साल पूरे हुए थे। इसी मौके पर, पुणे शहर के शनिवार-वाडा में, 'एल्गार परिषद' नाम की सभा आयोजित की गई थी। वहां, भीमा कोरेगांव के ऐतिहासिक युद्ध को अपनी साझी विरासत मानने वाले दलित तथा अन्य हाशियाकृत समुदायों ने आज की सरकार को 'पेशवाई का नया-रूप' कहते हुए, उसके खिलाफ वैचारिक जंग छेड़ने की संयुक्त मांग की। हमारा देश अत्याचार और शोषण के ज़रिए जाति, वर्ग और लिंग में विभाजित है; पर इस एल्गार परिषद में भाषण देने वालों, गाने वालों और नाटक करने वालों के दिल इस देश के हाशियाकृत समुदायों के लिये ही धड़क रहे थे। और ये धड़कनें खिलाफ थीं; बहुराष्ट्रीय कम्पनियों, पूंजीवाद, जातिवाद, भीड़शाही, महंगाई, किसानों की आत्महत्या, बेरोज़गारी और भ्रष्टाचार के। खैर ये बात तो पहले से ही स्पष्ट थी। वहां आए हुए सैकड़ों-हज़ारो लोगों ने उस दिन एक प्रतिज्ञा की, कि वे इस देश के संविधान के खिलाफ काम करने वाले किसी भी संगठन का हिस्सा नहीं बनेंगे, न ही उन्हें किसी भी प्रकार का सहयोग देंगे और संविधान के विरोधी आरएसएस द्वारा समर्थित भारतीय जनता पार्टी को वे अपना मत कभी नहीं देंगे।

एल्गार परिषद में सहभागी हुए दिलों की यही धड़कनें भाजपा सरकार को 'विद्रोही' और 'राजद्रोही' प्रतीत हुईं। उन्हें वो बम और बंदूकों से भी ज़्यादा डरावनी लगीं...और फिर सारी जांच संस्थाओं, गृह-विभाग और पुलिस को काम पर लगाया गया। भीमा कोरेगांव में 1 जनवरी 2018 में हुए दंगे के सूत्रधारों में से एक, संभाजी भिड़े के समर्थक तुषार दामगुडे की तरफ से 8 जनवरी 2018 को एक एफआईआर दर्ज की गई। और पहले से ही तय की गई कूटनीति के अनुसार, इस एल्गार परिषद का सम्बन्ध माओवाद से जोड़ने का काम केन्द्र और राज्य सरकार के गृह मंत्रालयों और उनकी वफादार मुलाज़िम पुणे-पुलिस ने बखूबी से किया।

'वे अभी तक नहीं लौटे':

पुलिस ने यह भ्रम फैलाया कि एल्गार परिषद में हुए भाषणों, गानों और नाटकों की वजह से ही यह दंगा भड़का और इसको आधार मानते हुए देश भर में 11 'शहरी नक्सलियों' को 'सर्जिकल स्ट्राइक' का इस्तेमाल कर गिरफ्तार कर लिया गया। इस घटना को साल भर बीत चुका है। देश की अलग-अलग जगहों में मानवाधिकार संरक्षण के लिए काम करने वाले कुल 9 वकील और कार्यकर्ताओं को सरकार ने अभी तक जेल में बन्दी बनाकर रखा हुआ है; और दूसरी तरफ संभाजी भिड़े और मिलिंद एकबोटे, जो भीमा कोरेगांव की इस घटना के असल सूत्रधार हैं, वे खुल्ला घूम रहे हैं। इसके अलावा, डॉ दाभोलकर, कॉ पानसरे, प्रो कुलबर्गी, पत्रकार गौरी लंकेश इन सब के कातिल और बम विस्फोट करवाने वाले भी ज़मानत पर आज़ाद ही घूम रहे हैं। अभी तक इन हत्याओं के सूत्रधारों को ढूंढने में सरकार असफल रही है। वो इसलिए क्योंकि वे हिन्दुत्ववादी पंथ के हैं। दाभोलकर के हत्यारों का पता लगाने के लिए पुणे पुलिस ने 'प्लेंचेट' (एक अंधविश्वासी परंपरा) का सहारा लिया था, ये बात तो हम जानते ही हैं। ताज्जुब की बात तो ये है कि इसी विभाग के उच्च-अधिकारियों ने बड़े उत्साह से 'शहरी नक्सलियों' के खिलाफ फर्जी खत-सबूत मीडिया के सामने पेश किए थे।

एल्गार परिषद के ठीक अगले दिन भीमा कोरेगांव में भगवे झण्डे लहराते हुए, अच्छी तरह से प्रायोजित दंगों का भड़कना, 'बंद' का कड़ा पालन होना, तीसरी मंज़िल से की गई पत्थरबाज़ी, और दंगे में बच्चों, महिलाओं और बुज़ुर्गों को लेकर जाना कैसे संभव हुआ, इन सभी सवालों पर सरकार का एक सीधा-सा जवाब था; 'अर्बन नक्सलिज़्म'।

आखिर भाजपा सरकार को 'अर्बन नक्सलिज़्म' के नाम के नए दुश्मन को गढ़ने की ज़रुरत क्यों पड़ी?

2006 में हुए खैरलांजी हत्याकाण्ड का विरोध करने के लिए जनता स्वस्फूर्ति से सड़क पर उतरी थी। उसे दबाने के लिए उस समय की कांग्रेस-एनसीपी की सरकार ने ये नई खोज की थी कि दलित आंदोलन में नक्सलवादियों की घुसपैठ हो रही है। और इस खोज के कारण लगभग 60 हज़ार से भी ज़्यादा युवकों की गिरफ्तारी हुई थी, बहुतों पर गोलियां तक चलाईं, 'कॉम्बिंग ऑपरेशन' किया और इस तरह से उस आंदोलन को 'शान्त' किया गया था। सवाल ये उठता है, कि इस इतिहास के चलते भाजपा को इस नए दुश्मन की ज़रुरत क्यों लगी?

2014 में भाजपा सरकार की सत्ता आई और पूरे देशभर में दलित-आदिवासी और मुसलमानों के खिलाफ हिंसा एकदम बढ़ गई। हैदराबाद विश्वविद्यालय के रोहित वेमुला की प्रशासन द्वारा की गई हत्या हो, गुजरात के ऊना में पुलिस के सामने दलितों की बेरहम पिटाई करना हो, सहारनपुर का ठाकुर और दलितों के बीच हुआ संघर्ष हो, दादर में डॉ बाबासाहेब अम्बेडकर भवन को गिराना हो या देशभर में दलितों पर बढ़ती संख्या में होने वाले उच्च जाति के अत्याचार हों...इन सारी घटनाओं की वजह से दलित-विरोधी भावनाएं बढ़ती गईं। एक तरफ कुछ दलित राजकीय नेताओं ने सत्ता के लोभ के कारण अपने आप को हिन्दुत्ववादियों को बेच दिया, तो दूसरी तरफ भाजपा ने अपने हिन्दू राष्ट्र के ध्येय को आगे बढ़ाने के लिए आरक्षण और अत्याचार निवारण कानूनों पर हमले किये...अपने ऊपर होने वाले इन हमलों का प्रतिकार करने के लिए फिर लोगों ने ही कमर कस ली और अपना संघर्ष शुरू किया। हर जगह उस संघर्ष ने नया रूप लिया था और हर जगह से नया युवा नेतृत्व सामने आ रहा था। इस जनांदोलन ने सरकार को पीछे हटने के लिए मजबूर कर दिया। इस पृष्ठभूमि पर, भाजपा की फासीवादी गुंडाशाही और जनता-विरोधी नीतियों का मुकाबला करने के लिए, देशभर में लड़ने वाली इन ताकतों ने इकट्ठा आकर लड़ने का फैसला लिया। जैसे 200 साल पहले, दलित-बहुजन और महिलाओं के विरोधी और पक्षपाती रहे पेशवाओं के खिलाफ सभी जाति-धर्म के लोग अंग्रेज़ों के नेतृत्व में एकजुट होकर लड़े, उसी पेशवा सत्ता की विरासत चलाने वाले मोदी-फडनाविस सरकार के विरूद्ध जंग छेड़ने के लिए सभी हाशियाकृत समुदाय एकजुट हों, इसी उद्देश्य के साथ महाराष्ट्र में कार्यरत 250 जनसंगठनों ने पुणे में एल्गार परिषद आयोजित की थी।

इस परिषद में हुआ आह्वान नए सामाजिक संघर्ष की शुरुआत थी, और ये आह्वान नई

रणनीति की ज़रूरत अधोरेखित करने वाला था। इस परिषद के माध्यम से सहभागी संगठनों को एक साझा मंच प्राप्त हुआ और इस मंच से, वहां मौजूद हज़ारों लोगों ने इस संविधान-विरोधी भाजपा सरकार को आने वाले चुनाव में मत न देने का प्रण लिया। इसलिए, जब 1 जनवरी 2018 को विजयस्तम्भ का अभिवादन करने के लिए भीमा कोरेगांव में आये हुए लोगों पर हिंदुत्ववादियों ने पूर्वनियोजित हमला किया, तब 3 जनवरी 2018 को 'महाराष्ट्र बंद' का पालन कर, सभी जाति-धर्म के लोगों ने उस हमले का प्रतिकार किया। इसी प्रतिकार की वजह से दंगे के असली सूत्रधार संभाजी भिड़े और मिलिंद एकबोटे का नाम सामने आया और जनता ने उन्हें गिरफ्तार करने की मांग की। इस जनसंघर्ष की वजह से हिंदुत्ववादी आतंकियों को बेनकाब किया गया।

कर्नाटक पुलिस की कोशिशों से जैसे ही गौरी लंकेश की हत्या की छानबीन आगे बढ़ने लगी, वैसे ही महाराष्ट्र सरकार और पुलिस विभाग पर दाभोलकर-पानसरे की छानबीन के लिए जनता का दबाव बढ़ने लगा। लोगों ने इन हत्याओं के ज़िम्मेवार हिंदुत्ववादी गुटों पर उंगली उठाना शुरू किया। इस वजह से हाल ही में हिन्दुत्व आतंकवाद के बारे में चर्चाएं होने लगीं। भिड़े-एकबोटे से शुरुआत कर हम अंदुरे-कालसकर-तावड़े तक पहुंच गए। इन सब वजहों से हिंदुत्ववादी गुटों को पीछे हटना पड़ा। 'अर्बन नक्सलिज़्म' नाम का दुश्मन गढ़े जाने की यही पृष्ठभूमि है।

जैसे ही ये चर्चाएं बढ़ने लगीं, हिन्दतुत्ववादी सत्ता को इस रिवायत का सामना करने के लिए नए काल्पनिक दुश्मन की ज़रुरत पड़ी, चूंकि इस्लामी दहशतवाद, माओवाद, दलितों का होहल्ला ये सब पुराने हो चुके थे। और अब तो 'विद्रोही', 'राष्ट्रद्रोही', 'टुकड़े-टुकड़े गैंग' इस तरह के शब्द भी अपना प्रभाव खो चुके थे। 'अच्छे दिन' का ख्वाब अब एक विनाशकारी सच्चाई में बदल चुका था, जिससे मोदी ने खुद अपने लिए भय पैदा कर लिया था। 2019 के चुनाव के लिए इस संकट से कुछ खतरा उत्पन्न होने की प्रबल संभावना के कारण ही 'अर्बन नक्सलिज़्म' का बिजूका तैयार किया गया था। नक्सली विचारधारा से सहमति और नक्सली विचारों के लोगों के प्रति सहानुभूति, और ये नहीं तो मात्र आदिवासी हक आदि मुद्दों का आग्रह, ये चीज़ें किसी भी व्यक्ति को 'अर्बन नक्सल' कहने के लिए काफी थीं। और यदि आप उन लोगों में से हैं जो डॉ अम्बेडकर या भगतसिंह की या कार्ल मार्क्स की किताबें पास में रखते हैं, तब तो आप गए। अब से हथियार, बंदूकें व हाथ से बनाये बम पास में रखने की कोई आवश्यकता नहीं बची है।

'कानूनी व्यवस्था के सवाल' के पीछे क्या छुपा है?

केंद्र व राज्य सरकार दावा कर रही है कि दरअसल 'अर्बन नक्सल' का मसला कानूनी व्यवस्था की समस्या है। जबकि न्यायमूर्ति पी बी सावंत और न्यायमूर्ति कृष्णा अय्यर ने अपनी रिपोर्ट देते हुए सुझाव दिया था कि गुजरात के गोधरा में हुए दंगे के लिए ज़िम्मेदार नरेंद्र मोदी और अमित शाह को देश का कोई भी संवैधानिक पद न दिया जाए। 2019 के चुनाव को मद्देनज़र रखते हुए, वैचारिक विरोध को रोकने के लिए एल्गार परिषद के साथ सम्बन्ध जोड़कर 11 लोगों को गिरफ्तार किया गया। भीमा कोरेगांव के विशेष सन्दर्भ में कानूनी व्यवस्था की समस्या के नाम पर नक्सलवाद का बिजूका खड़ा करने की ज़रूरत भी इसी वजह से उभरकर आयी। दूसरी तरफ, मीडिया और अन्य प्रचारक तंत्रों द्वारा राष्ट्रवाद के सन्दर्भ में नक्सलवाद की नकारात्मक छवि पेश की गई।

जबकि सुप्रीम कोर्ट ने कहा भी था कि नक्सलवाद भी सामाजिक और आर्थिक विषमताओं की वजह से जन्म लेता है। यह सब महंगाई, बेरोज़गारी, भ्रष्टाचार, भीड़शाही इस तरह के बुनियादी मुद्दों से लोगों का ध्यान बंटाने की कोशिशों का सुनियोजित तरीका है।

राज्य की नज़र में किसी पर 'नक्सलवादी' का ठप्पा लगाना केवल शाब्दिक कृति नहीं है। यहां पर वो दो तरीके अपना रहे हैं; पहला दहशत फैलाना और दूसरा मनोबल तोड़ना। जब इन विचारकों-कार्यकर्ताओं के घर पुलिस का एक पूरा दस्ता भेजा जाता है, तब ये आम जनता के बीच दहशत फैलाने का काम करता है। जब पुलिस को राष्ट्र नाम की अमूर्त संकल्पना की हिफाज़त करने में ज़्यादा रुचि है, तब सामने खड़े मूर्त इन्सान और इन्सानियत को अपमानित करते हुए उन्हें कोई दिक्कत नहीं होती। अगर एक औरत ने माथे पर बिंदी नहीं लगाई, तो ये बात उनकी ब्राह्मणी पितृसत्ता को 'विस्फोटक' लगती है। जातिवादी सोच पुलिस की वर्दी में हमारे कानूनी तंत्रों से जीत गई है। यह बात ये साबित करती है कि सरकारी तंत्र पुलिस फोर्स के तंत्र में भरे जातिवाद के मैल को साफ नहीं कर पाया है। ये कार्रवाई इसलिए की जा रही है कि लोगों का मनोबल टूटे और एक राजनीतिक भय का माहौल बने, जिसमें सामाजिक कार्यकर्ता हाशियाकृत समुदायों के साथ खड़े न रह पाएं और उनके मुद्दों को आवाज़ ना मिल पाए। और जो राजकीय तंत्र ये कर रहे हैं, वे खुद भी हाशियाकृत लोगों के हकों की परवाह नहीं करते क्योंकि वो तो जीते ही हैं उच्चवर्ग और जाति के लोगों के हित की रक्षा करने के लिए।

हमारे दुश्मन को ये लगता है कि परमाणु बम से ज़्यादा खतरा हमारे समाज के कलाकारों के काम और कलाकृतियों से है, और वे उन लोगों को ही दुश्मन मान लेते हैं। हिटलर की गुप्त-पुलिस के मुखिया हरमन गोअरिंग ने कहा था, 'संस्कृति' ये शब्द सुनते ही, मैं 'ब्राउनिंग' ढूंढने लगता हूं। ब्राउनिंग शब्द से उसका मतलब अंग्रेज़ कवि नहीं था पर वो रिवॉल्वर थी, जिसका नाम भी ब्राउनिंग था। गोअरिंग ने समझ लिया था कि एक सम्पन्न और उन्मुक्त सांस्कृतिक माहौल हमेशा तानाशाही के लिए खतरा है; उसमें तानाशाही का मज़ाक भी होगा और अन्त भी। हिटलर हो, मुसोलिनी हो या अभी के ट्रम्प-मोदी। सभी एक जैसे हैं। रबीन्द्रनाथ टैगोर की एक सुंदर कविता है:

"जहां मन है निर्भय और मस्तिष्क है ऊंचा
जहां ज्ञान है मुक्त
जहां पृथ्वी विभाजित नहीं हुई है
छोटे-छोटे खंडों में
संकीर्ण स्वदेशी मानसिकता की दीवारों में
जहां शब्द सब निकलते हैं
सत्य की गंभीरता से
जहां अथक प्रयास उसका हाथ बढ़ा रहा है
परिपूर्णता की ओर
जहां स्पष्ट न्याय का झरना खोया नहीं है
अपना रास्ता
निर्जन मरुभूमि के मृत्यु जैसा नकारात्मक
रेत के अभ्यास में
जहां मन को नेतृत्व दे रहे हो तुम
ले जा रहे हो निरंतर विस्तारित विचार और
गति के मार्ग को
ले जा रहे हो वही स्वतंत्रता के स्वर्ग को,
हे मेरे पिता, मेरे देश को जागृत होने दो।"

ये कविता अंग्रेज़ों के समय में लिखी गई थी। अंग्रेज़ों ने इस कविता पर एतराज़ नहीं जताया था पर आपातकाल के दौरान इस कविता को अखबार में छापने पर पाबन्दी लगाई गई थी। और आज शासक क्या कर रहे हैं? वे कहते हैं कि एक कविता से हिंसा भड़क रही है:

'ये कैसा है शहर, और तुम किस तरह के जीव हो
जब जुल्म हो, तब बगावत होनी चाहीये शहर में
और अगर बगावत न हो
तो बेहतर हो की रात ढलने से पहले
ये शहर जलकर राख हो जाय।'

ये कविता बेर्तोल्ट ब्रेख्त ने हिटलर के समय अपने एक नाटक में लिखी थी। सरकार ने ये बेवकूफी भरी बात कोर्ट में पेश की कि "इस कविता को पूना की एल्गार परिषद में पढ़ा गया था और अगले दिन भीमा कोरेगांव में दंगा भड़क उठा।" इसे सुनकर बस इतना पूछने का मन करता है कि "सरकार का दिमाग ठिकाने पर तो है?" एक कविता इससे

भी ज़्यादा तीखी है- "खून से प्रज्वलित हुए अनगिनत सूरजों, इस शहर को आग लगाते चलो।" पर इस खास कविता के कवि नामदेव ढसाल को भारत सरकार द्वारा पद्मश्री दिया गया।

26 नवम्बर 1949 में इस देश को संविधान प्रदान करते हुए डॉ बाबासाहेब अम्बेडकर ने ये कहा था, "कब तक हम यूंही विरोधाभास में जीते रहेंगे? आर्थिक और सामाजिक समानता को कब तक नकारते रहेंगे? यदि हम यूंही इन्हें चलाते रहे तो एक दिन हमारी लोकतांत्रिक राज्यव्यवस्था ही खतरे में आ जाएगी। जितनी जल्दी हो सके उतनी जल्दी अगर हमने इस विषमता को खत्म नहीं किया तो जो लोग उसकी मार सह रहे हैं, वो एक दिन इस राजनैतिक-लोकतांत्रिक ढांचे को उड़ा देंगे जिसे ये सभा इतनी ताकत लगाकर बना रही है।"

यदि आज के सत्ताधारियों को ब्रेख्त की कविता खतरनाक लगती है, और ये भी कि वो हिंसा भड़काती है, तो बाबासाहेब अम्बेडकर के शब्द भी उससे बहुत अलग नहीं है। तो क्या अब उन पर भी हिंसा भड़काने का केस ठोका जाएगा? आज के ज़माने में ऐसा कौन कह सकता है?

पुलिसराज की ओर:

आज की सरकार ऐसे विचारों को लिखने, बोलने और उन पर अमल करने वाले को देश का दुश्मन मानती है, पूरा देश अब पुलिसराज में बदला जा रहा है। राष्ट्रीय जांच एजेंसी (एनआईए) के नियम-कानून बदलकर पुलिस तंत्र को और मज़बूत करने के लिए कदम बढ़ाये जा रहे हैं। और गैर-कानूनी गतिविधियां (रोकथाम) अधिनियम (यूएपीए) में बदलाव कर, किसी को भी आतंकवादी करार करना आसान हो गया है। यूएपीए में किए गए नए संशोधन किसी को भी आतंकवादी घोषित कर सकते हैं और इस कानून की मदद से कोई भी विरोध आसानी से मरोड़ा जा सकता है। यदि किसी व्यक्ति के खिलाफ ऐसे विरोध के लिए कार्रवाई की जाती है, तो वो व्यक्ति कितने समय तक जेल में बंद रहेगा ये कह नहीं सकते। इससे पहले भी, टाडा, पोटा, मकोका, रासुका, जनसुरक्षा अधिनियम, अफ्स्पा इन सब कानूनों का खुले तौर पर दुरुपयोग किया गया है। इनसे जुड़ी कई दर्दनाक कहानियां लोगों की यादों में हैं।

मुंबई पर हुए हमले के बाद उस समय सत्ता में रही कांग्रेस सरकार ने आतंकवाद को खत्म करने के नाम पर ऐसे ही कानूनों को बनाने का प्रस्ताव रखा था, तब गुजरात के उस समय के मुख्य मंत्री और अभी के प्रधान मंत्री ने इसका कड़ा विरोध किया था। अब उनकी पार्टी सत्ता में है, तब इससे भी कठोर कानूनों को बनाया जा रहा है। केन्द्रीय सरकार को असीमित ताकत देने वाले इस प्रावधान ने भारतीय राज्य को एक पुलिसराज्य में तब्दील करने में मदद की है।

असल में इस तथाकथित आज़ादी के दौर में अपने ही लोगों के खिलाफ ये एक अच्छी-खासी शर्मनाक साज़िश है। 'अर्बन नक्सल' ये शब्द जनता के बीच में फूट डालता है, और विरोध को कुचलता है। इसीलिए, 'अर्बन नक्सल' के नाम पर की गई ये गिरफ्तारियां राजनैतिक बदले की भावना से की गई हैं और हमारे संविधान पर हमला हैं। हमारे तथाकथित लोकतंत्र का तो पहले ही खून हो चुका है। अब की स्थिति 1975 के आपातकाल से भी बदतर है। ऐसे खौफनाक समय में हम जी रहे हैं।

पर इसी समय में भीमा कोरेगांव पर हुए हमले और उसके खिलाफ खड़े हुए जनांदोलन से एक नए दलित आंदोलन ने जन्म लिया है। 'अर्बन नक्सल' नाम का बिजूका खड़ा करने के बावजूद, 1 जनवरी 2019 को भीमा कोरेगांव के विजयस्तम्भ को अभिवादन करने के लिए पांच लाख से भी ज़्यादा लोग इकट्ठा हुए। राज्य सरकार ने पूरे परिसर को पुलिस छावनी में बदल दिया, पर वे जनता को अपने प्रेरणास्थान से दूर नहीं कर पाए और

ना ही उन्हें रोक सके। इस जनांदोलन से नया दलित नेतृत्व उभर रहा है। और इस आंदोलन ने सिर्फ सत्ताधारियों को ही चुनौती नहीं दी है बल्कि, भ्रष्ट राजनीति करने वाले स्थापित दलित नेताओं को भी चुनौती दी है। नए गठबन्धन और नई दोस्ती के लिए एक जगह बनी है। भीमा कोरेगांव और एल्गार परिषद की वजह से जो वैचारिक मंथन हुआ, उससे एक नया आंदोलन मज़बूती से उभर रहा है। सैकड़ों अन्याय और हज़ारों अत्याचारों से लाखों लोगों में चेतना जग रही है। सत्ताधारियों के जुल्म और सफेद झूठ आज जनता की ताकत बन रहे हैं। और जनता की यही ताकत उन बन्दियों को मुक्त करेगी जो आज अपने विचारों और कामों की वजह से जेल में हैं...

जब धरती करवट बदलेगी, जब कैद से कैदी छुटेंगे
जब पाप घरौंदे फुटेंगे, जब जुल्म के बंधन टूटेंगे
जेलों के बिना जब दुनिया की सरकारे चलायी जायेगी
वो सुबह को हम ही लायेंगे, वो सुबह हमी से आयेगी...

चुप्पी की संस्कृति - शोमा सेन

सबसे पहले मैं सभी का शुक्रिया अदा करना चाहती हूं – हम सबके लिए जो सहयोग और समर्थन आपने दिया, उसके लिए। एक ऐसे समय में जब राजनीति और प्रशासन झूठ और मिथ्या प्रचार पर, सहमति निर्मित करने और प्रतिरोध के स्वरों को चुप करा दिए जाने पर टिका हुआ है, हमारे मामले (मुकदमे?) भी पूरी तरह से झूठे और बनाए गए साक्ष्यों पर आधारित हैं जो सत्ता पर काबिज़ लोगों को मनवाने के लिए चोरी-छुपे रखवाए गए हैं। हमारी गिरफ्तारी और जेल में बन्द होना, मानव अधिकारों के पक्ष में काम करने वालों पर यह हमला, उस वैश्विक प्रचलन का ही एक अंग है जो हर उस जगह देखा जा रहा है जहां दक्षिणपंथी ताकतों के नेतृत्व में दमनकारी और निरंकुश सरकारें हैं। जहां कठुआ और उन्नाव जैसी लैंगिक हिसा की घटनाएं होती जा रही हैं, जातिगत हिंसा और किसानों की आत्महत्याएं जारी हैं, पर इन घटनाओं को करने वालों के लिए अभयदान और दंडमुक्ति बरकरार है, वहीं लोक सभा ऐसे अध्यादेशों को बिना बारीक छानबीन के पास करती जा रही है जो लोगों के अधिकारों को और सीमित कर देती है।

जहां मैं बैठी हूं, मैं देख रही हूं कि अब जब हम अपने 72वें स्वतंत्रता दिवस की ओर बढ़ रहे हैं – कितना कम बदला है (या लगभग कुछ भी बदला नहीं है।) महिलाएं, जो ज़्यादातर वंचित, निचली जाति के परिवरों से आती हैं, लगभग अनपढ़ हैं, जिनकी शादियां 14-15 साल की उम्र में कर दी गई थीं – जेल में सड़ने वालों में से अधिकांश यही हैं। ये महिलाएं इस बात की जीती-जागती सबूत हैं कि किस तरह समाज में और न्यायपालिका में भी पितृसत्ता काम करती है। ये वही मुद्दे और लोग हैं जिनके लिए हम लड़ रहे थे। क्या एक बहू या सास या हिंसक पति को मार देने के लिए आजीवन कारावास में रहना समस्या का हल है, या हमारी वह कोशिश कि हमारे सामाजिक-आर्थिक ढांचे की बुनावट में ही परिवर्तन हो – जिसकी कोशिश आप और हम करते आए हैं?

आइए, चुप्पी और डर की इस संस्कृति को पार करने के लिए जुटे रहें।

समर्थन में,

बेचैनी - वर्नन गोंज़ाल्विस

यहां की सलाखें बहुत सुरक्षित हैं, शान्त और बहुत सुरक्षित। लोहे की हैं। उनकी परछाईं में भी ताकत है। और फिर उनकी मोटी सिटकनियों की वो अशालीन खड़खड़ाहट। बंद, खुलना, फिर से बंद होना, फिर से खुलना - बहुत नियमित और हरदम होने वाली। ये सब मेरे आसपास एक नियमितता प्रदान करते हैं, एक आश्वासन देते हैं – कभी-कभी सांत्वना भी देते हैं।

उस दिन मुझे एक बुरा ख्वाब आया। डर में यहां से वहां भाग रहा था। हर स्टॉप पर वही एक मुस्कराता हुआ अपनी तोंद लिए एक बाबू अपनी बड़ी किताब के पीछे से झांकता हुआ। किताब को ज़ोर से बंद करते हुए उसकी आंख ने मुझे घूरा और बिना आवाज़ के फैसला सुना दिया। "रजिस्टर में नहीं है!" मेरा पीछा करता, मैं जहां जाता मेरे पीछे भागता। "रजिस्टर में नहीं है!"

पसीने में तर मैं जाग गया। सलाखें अपनी जगह पर थीं और उनकी परछाईं भी। उनकी अशालीन खड़खड़ाहट नियमानुसार गलियारे से चली आ रही थी। इन सब ने मुझे आश्वस्त किया कि मेरा नाम दर्ज है। मैं किताब में हूं। और मुझे सुरक्षित महसूस हुआ।

बार-बार वो सब हावी हो जाते हैं। विशाल बुलडोज़रों पर सवार वो मेरे गांव को रोंद रहे हैं। मैं भागता हूं और भागता हूं। पेड़ों और चट्टानों के पीछे छिपने की कोशिश करता हूं पर इसका कोई फायदा नहीं। वो आग उगलते हैं, चारों ओर विस्फोट करवाते हैं। हैलीकॉप्टर मंडराते हैं और गोलियां उड़ती हैं।

उनका घेरा अब और पास आ गया है। सबसे डरावना है वो अच्छे कपड़ों वाला आदमी। वो एकाग्रता के साथ हत्यारों से लैस झुंडों को उकसाता जा रहा है। उसकी आंखों के खौफ को मैं भुला नहीं पाता। उसकी आंखों में कॉर्पोरेट सोशल रिस्पॉन्सबिलिटी की चमक है।

आखिरकार मुझे उठना पड़ेगा। मेरे चारों ओर शांत, स्थिर ग्रेनाइट की दीवारें हैं। उनका घेरा कम नहीं हुआ है, वो मेरा दम नहीं घोंट रहीं। और यहां पर वो भी तो हैं, वो जानी-पहचानी सलाखें और उनकी स्थिर परछाईं। अच्छा लगता है ये जानकर कि मुझे तोड़ा नहीं जा रहा, मुझे रौंदा नहीं जा रहा।

आजकल निराशा ही सर्वोच्च है। दृश्य बहुत सुंदर है पर खौफ और दुख से घिरा हुआ। दूर कहीं युद्ध की गूंजें सुनाई पड़ती हैं। किसी पर बम गिराया जा रहा है। कोई बच्चा कहीं रोता है, और वो सुंदर झील एक भयावह लाल में बदल जाती है।

मैं कांपता हुआ उठता हूं। मेरी प्रिय सलाखें मुझे शांत करती हैं। गर्माहट देती हैं। मैं सलाखों के पीछे हूं। उनके आलिंगन में मुझे किस बात का डर?

मुझे अपने आप को याद दिलाने की ज़रूरत नहीं है कि मैं कितना किस्मतवाला हूं। अच्छा ही तो है इन सलाखों की पनाह में रहना जब बाहर की दुनिया में इतनी दहशत और आतंक है। मेरे पास तो अब लोहे में गढ़ा हुआ सबूत है कि मैं नहीं हूं सड़कों पर फासीवाद के खिलाफ लड़ता हुआ।

हां, मैं बेचैन हूं।

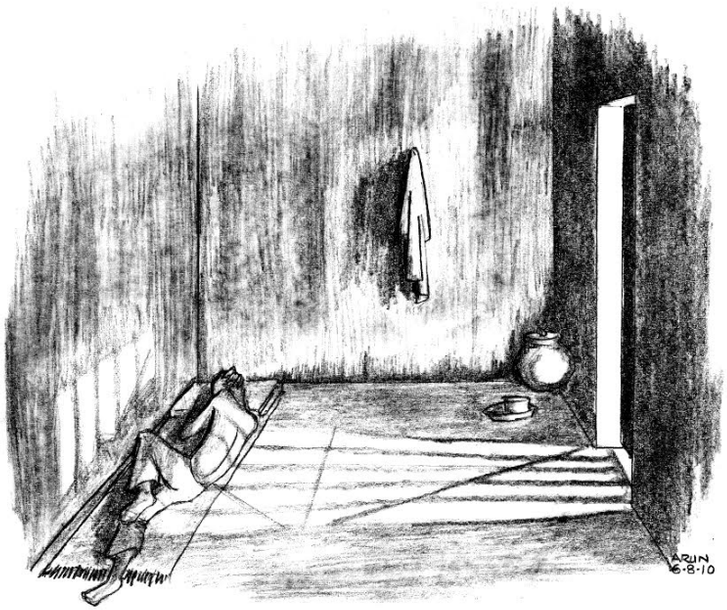

कला: अरुण फरेरा; कलर्स ऑफ द केज

हमने खुद भी बहुत-सी यातनाएं सही हैं और जेलों में कई लोगों से बातचीत की है जिन्होंने या तो खुद यातनाएं झेली हैं या उनके प्रियजनों ने यातनाओं को सहा है। इतना तो हम समझ गए हैं कि यातना देने वाले को संतुष्ट करने के लिए सच नहीं बोलना पड़ता सिर्फ उसे वो देना पड़ता है जिसको वो सच मानता है।

अगर सच पूरब है पर यातना देने वाला पश्चिम सुनना चाहता है तो दर्द से बचने के लिए तुम्हें पश्चिम ही बोलना पड़ेगा। यातनाओं में वो ताकत ही नहीं कि वो सही जानकारी निकाल सके या फिर कोई जुर्म सुलझा सके। वो तो बस ज़बरदस्ती एक गुनाह कबूल करवा सकती है जैसा वो करवाना चाहती है अपनी पुलिस जांचकर्ता या उसके आका के हुकुम पर।

- अरुण और वर्नन, डेइलो

“ग़म की शाम है ज़रूर, मगर शाम ही तो है” -सुधा भरद्वाज

जुलाई में एक साल पूरा हो गया है, रिपब्लिक टीवी में उस अजीबोगरीब पत्र के प्रसारण का, जो तथाकथित रूप से ‘कॉ सुधा’ ने ‘कॉ प्रकाश’ को लिखा था। वह भी किसी और शहर में, किसी और के कम्प्यूटर पर, निहायत मराठी लहज़े में! मैंने उसी दिन उस पत्र का सार्वजनिक खंडन किया। रिपब्लिक टीवी को मानहानि नोटिस भेजी। अजय साहनी जैसे ‘टेररिज़्म’ विशेषज्ञ ने इस पत्र और पुणे पुलिस द्वारा प्रेस को बांटे गए 12 अन्य पत्रों को एक ‘बचकाना’ हरकत और ‘अविश्वसनीय’ बताया। मुंबई हाई कोर्ट ने प्रेस कॉन्फ्रेंस करने के लिए पुणे पुलिस को डांटा। और न्यायमूर्ति चंद्रचूड़ ने अपने अन्यमत निर्णय में पुणे पुलिस की विवेचना पर सवाल उठाये।

28 अगस्त 2018 की तलाशी, 2 माह की घर कैद, 10 दिन की पुलिस पूछताछ, और 9 महीने के येरवडा जेल के सेप्रेट यार्ड के कारावास के बाद आज भी मेरे खिलाफ मात्र वही बचकाना और अविश्वसनीय ‘सबूत’ है। जब कोई आरोप तथ्यों, घटनाओं पर आधारित होता है, तो उससे लड़ने का तरीका समझ में आता है। एक फर्जी इलेक्ट्रोनिक ‘फाइल’ से कैसे लड़ा जाये?

जब हम सभी आरोपियों ने मांग की कि उन तमाम डिवाइसेज़ का डाटा, जो पुलिस के अनुसार उन्होंने विभिन्न आरोपियों से ज़ब्त किया है, उसकी क्लोन कॉपी हमें दी जाये – जो वास्तव में ज़ब्ती के समय ही हमें दी जानी चाहिये थी और जो निश्चित तौर पर हमारी चार्जशीटों का हिस्सा होनी चाहिये थी – तो एक और बड़ा मखौल हमारे साथ शुरू हुआ है। कोर्ट के आदेश के मुताबिक सभी आरोपियों की उपस्थिति में डिस्कों की 10-10 कॉपी (9 अभियुक्तों और 1 कोर्ट के लिये) बनाई जानी है। एक दिन में सिर्फ कॉपियां ही बनाई जाती हैं। लगता है ट्रायल की ज़रूरत ही नहीं पड़ेगी, कॉपी बनाने में ही सज़ा की मियाद पूरी हो जायेगी।

नब्बे साल पहले, 1929 में, ब्रिटिश सरकार ने एक ‘मेरठ कॉन्स्पिरेसी’ केस चलाई थी। फडनाविस सरकार की यह ‘पुणे कॉन्स्पिरेसी’ केस किसी भी मामले में उससे कम नहीं है! खैर, मज़दूरों के हक के लिये, आदिवासियों के वन अधिकारों के लिये या गांववालों के पर्यावरण के लिये बड़ी-बड़ी कंपनियों से मुकदमेबाज़ी करने का और क्या इनाम मिलेगा? फर्जी मुठभेड़, दलित अत्याचार, अल्पसंख्यकों के उत्पीड़न को लेकर सरकार का विरोध करने का यही तो पुरस्कार है।

आजकल जेल में बैठकर अखबार पढ़ते हैं तो बहुत चिन्ताएं उठती हैं। आदिवासियों को खदेड़ने की खबर, मज़दूर कानून में फेरबदल, सूचना के अधिकार (आरटीआई) कानून को कमज़ोर करना, लिंचिंग की खबरें, दल-बदलपन की पराकाष्ठा, पब्लिक सेक्टर का विनिवेश, ऑस्ट्रेलिया के डेयरी उत्पाद और चीन के दाल के लिये बाज़ार खोलने के प्रस्ताव...। पर फिर सुर्खियों के बीच, हर जगह विरोध की खबर, कमज़ोर ही सही, ज़्यादा संगठित न सही, भी होती है – और फिर आशा की लहर उठती है। हमसे छीने जाने वाली सबसे मूल्यवान चीज़ है – अपने उन बेनाम साथियों के साथ मोर्चे में जुड़ने, अदालतों में लड़ने, बहसों में भाग लेने की आज़ादी। अपने सपने, लिबर्टी, इक्वेल्टी और फ्रेटरनटी, वाले देश को बनाने की आज़ादी।

मुझे मालूम है – मेरे यूनियन के बहन-भाई, मेरे साथ कोर्ट में लड़ने वाले नौजवान वकील, बहुत से आदरणीय प्रोफेसर, ट्रेड यूनियन नेता, मानव अधिकार कार्यकर्ता, हाई कोर्ट और सुप्रीम कोर्ट के वरिष्ठ वकीलगण, हमारे दोस्त और परिवार – निरंतर हमारे लिये सोच रहे हैं,

निस्वार्थ रूप से हमारी रिहाई के लिये लगे हैं और हमारे हौसले को बुलंद रखने के लिये हर छोटी-बड़ी मदद कर रहे हैं। आपके प्यार की ताकत से हम टिके हुए हैं। मैं इन सबको बहुत धन्यवाद और आदर भेजना चाहती हूं।

जेल में आने के बाद 24X7 व्यस्तता की बजाय एक मूक दर्शक की भूमिका में, मेरे अन्दर प्रकृति के प्रति एक नई चेतना पैदा हुई है। रात के बाद सुबह का आना, कड़ाके की ठंड के बाद धूप का आना, थकाने वाली गर्मी के बाद झमाझम बारिश। इसमें मेरे अन्दर मानव जीवन के बदलाव और बेहतरी का विश्वास और भी प्रबल हो गया है। धीरे होगा, पीड़ादायक होगा, मगर होगा। “गम की शाम है ज़रूर, मगर शाम ही तो है।”

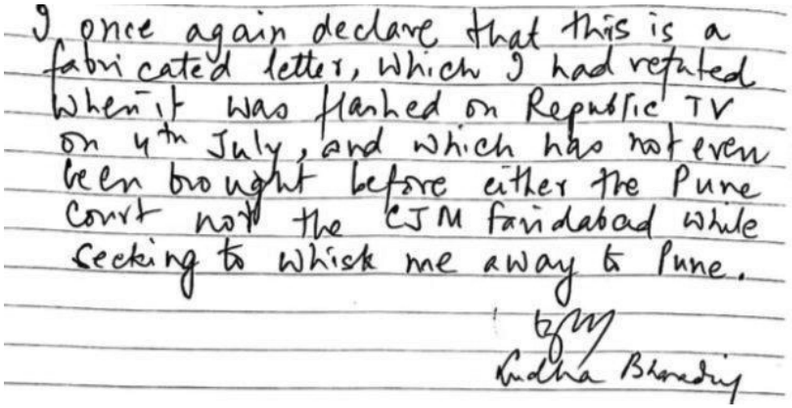
I once again declare that this is a fabricated letter, which I had refuted when it was flashed on Republic TV on 4th July, and which has not even been brought before either the Pune Court nor the CJM Faridabad while seeking to whisk me away to Pune.

Sudha Bharadwaj

भय का जीडीपी - रोना विल्सन

नेहरू ने इसे 'धरती पर स्वर्ग' कहा था। बाद में इसे एक 'ताज' का 'रत्न' कहा गया। आपने जिस भी मुनासिब तरीके से इसे एक 'वस्तु' बनाया हो, आज खुली आंखों के सामने ज़ाहिर बात से इंकार करना मुश्किल हो सकता है - कि इस 'ताज' का 'रत्न' गुमशुदा है। 'धरती पर स्वर्ग' आज एक बंजर-सी भूमि दिखती है। आज यह ताज नुकीले तारों की गिरफ्त में है, ये तार इस ताज को निगलकर अदृश्य कर चुके हैं। अब रह गए हैं तो सिर्फ नुकीले तार। यह कहा जा सकता है मगर 'असंतोष' पैदा करने के आसन्न भय के साये में ही कि यहां हमेशा से ही ऐसा रहा है। पर आज फारूक अब्दुल्लाह, ग़ुलाम नबी आज़ाद, महबूबा मुफ्ती जैसे लोग भी जो अपनी विश्वसनीयता खो चुके हैं, इस बात को नहीं नकार सकेंगे। मीडिया की अंधराष्ट्रीयता से लैस सुर्खियां, चिल्लाकर ऐलान कर रही थीं – अनुच्छेद 370 निरस्त हुआ, एकीकरण पूरा हुआ। 'दुनिया का सबसे बड़ा लोकतंत्र' नुकीले तारों में गिरफ्त ताज के साये में अब काम कर रहा है।

जम्मू और कश्मीर बाकी उपमहाद्वीप को आईना दिखाता है। वहां हो रही बदसुलूकी, बर्बरता और वहां के लोगों के तिरस्कार का स्तर और अमानवीकरण पर हम सब की गहरी चुप्पी, हमारे खुद के अमानवीकरण की माप है, प्रमाण है। हम सब का मानसिक 'सेक्युरिटिज़ेशन' हो चुका है, हमारे मन की काल कोठरियों में डर पनप रहा है। खुद के लिए बनाए हुए सुरक्षा के घेरे में कैद मन अब निष्प्राण-सा होने लगा है।

इस इलाके के हर सचेत समीक्षक कहते हैं कि वर्तमान में चल रहा नज़रबंदी का दौर इतिहास में सबसे खतरनाक साबित हो रहा है। सेना, अर्द्धसेना और पुलिस ने इलाके के चप्पे-चप्पे को काबू में कर रखा है, जहां से वो कैद लोगों की हर सांस पर नज़र रखे हुए हैं, इन लोगों को शायद पता ही नहीं कि उन पर किस तरह का प्रहार हुआ है।

हमारे सामने का घटनाक्रम भारतीयों के लिए, पर प्रत्यक्ष रूप से जम्मू और कश्मीर के लोगों के लिए, ज़ाहिर करता है कि मोदी शासन का ईमानदारी, जवाबदेही और पारदर्शिता से कोई इत्तेफाक नहीं रह गया है। पहले एक समायोजित रूप से फैलाई हुई अफवाह कि अमरनाथ तीर्थयात्रियों पर आतंकी हमला हो सकता है, उसके बाद सारे पर्यटकों और तीर्थयात्रियों को तुरन्त इलाके से जाने को कहा, फिर सारी संस्थाओं, कॉलेजों और स्कूलों को बंद कर दिया गया, जिसके बाद इस पूरे क्षेत्र के लिए अतिरिक्त सेना मंगाई गई जो पहले से ही दुनिया का सबसे सैन्यीकृत इलाका है, सारी तकनीकी संचार सुविधाओं को बंद कर दिया गया, अंत में संसद में एक बेहद ज़रूरी विधेयक लाया गया, जिसका खास प्रभाव जम्मू और कश्मीर के लोगों की ज़िंदगियों पर तो होगा ही, साथ ही पूरे उपमहाद्वीप पर भी। इस विधेयक को रहस्यमय तरीके से डर और धमकियों के साये में लाया गया जहां सांसदों पर एकमुश्त ज़बरदस्ती की गई। यह विधेयक रिकॉर्ड समय में पास कराया गया, जिसके बाद दक्षिणपंथी अतिवाद का नया हथियार – ट्रोल आर्मी सक्रिय हुई। हिन्दुत्व राजनीति की नफरत भड़काने और डर फैलाने की परंपरा का पालन करता उत्तर प्रदेश का विधायक विक्रम सैनी, भाजपा के नौजवानों को जम्मू और कश्मीर जाकर ज़मीन खरीदने और 'गोरी' लड़कियों से शादी करने के लिए उकसा रहा था। हरियाणा के लिंग अनुपात जैसे गंभीर मुद्दे के सन्दर्भ में मुख्यमंत्री मनोहर लाल खट्टर बेहद संवेदनाशून्य भाषा में जम्मू और कश्मीर से औरतों को लाने की संभावना के बारे में बोलते हैं।

कला: मीर सुहेल

इन सब के बीच, एक शुद्ध ज्ञानरत ट्वीट आया उस व्यक्ति से जो इस 'सबसे बड़े लोकतंत्र' में एकतरफा बातचीत करने में माहिर है और जिसे लोगों की बातों को काटने में महारत हासिल है। हमेशा की तरह, जैसा नोटबंदी के समय भी देखा था, पुलवामा/बालाकोट या फिर कई इन्हीं तरह के तमाशों के लिए कड़े प्रयास कर प्रधान मंत्री यह समझाने में लगे हुए थे कि यह सारी चीज़ें उन्होंने जम्मू और कश्मीर के लोगों की कुशलता और सामूहिक विकास के लिए ही की हैं। उनका यह ट्वीट तब आया जब जम्मू और कश्मीर के लोग संचार-नज़रबंद थे।

इस सरकार की हर बात और व्यवहार छलावा है। एक तरफ पाकिस्तान को 'रोग' राज्य कहते हैं जो कि सैन्य और खुफिया एजेंसियों के अंगूठे के नीचे है, वहीं दुनिया के 'सबसे बड़े लोकतंत्र' के प्रिंट और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के प्राइम टाइम और सम्पादकों पर सैन्य और खुफिया एजेंसियों के दिग्गजों का मजमा होता है। खासकर जम्मू और कश्मीर, उत्तर-पूर्वी राज्यों, केंद्रीय और पूर्वी इलाकों की चर्चा के वक्त। अधिकतम सरकार, संसद को कार्यपालिका की तरह उपयोग करना, मोदी सरकार का न्यायपालिका पर बढ़ता दबदबा – यह सब इनके न्यूनतम सरकार होने के वादे के एकदम विपरीत है। विडंबनाओं के बादशाह नरेन्द्र मोदी ने दुनिया को बताया कि अनुच्छेद 370 का निरस्तीकरण और पूरे जम्मू और कश्मीर को दो केन्द्र-शासित प्रदेशों में विभाजित करना – जम्मू और लद्दाख, यही एक मात्र तरीका था यहां के लोगों के बेहद ज़रूरी विकास का। इनका कहना है कि यहां के लोगों को 'विकास' से बहुत समय से वंचित रखा गया है। प्रधान मंत्री इस 'विकास पैकेज' के तोहफों की सूची पेश करते हैं – जो कि जम्मू और कश्मीर और लद्दाख के लोगों को बाकी संसार और सभ्यता की धारा से जोड़ेगा। यह बात उसी पाखंड की याद दिलाती है जो कभी ब्रिटिश राज के लिए इस्तेमाल किया जाता था – 'वाइट मैन्स बर्डेन' ('गोरी चमड़ी का भार') जिसकी वजह से एक दिव्य विधि के अनुरूप, उपनिवेशवाद की मंशा शासितों को 'जंगलीपन' से सभ्यता की ओर ले जाने की थी। बहुत सारे विशेषज्ञों (रिटायर्ड सेना जनरल, खुफिया एजेंसी अधिकारी) और मीडिया सम्पादकियों ने इन चीज़ों को 'स्टेट्समैन-लाइक' (राजनेता की रणनीति) बताते हुए कहा कि ऐसे उपायों की जम्मू और कश्मीर के असहाय लोगों को सख्त ज़रुरत थी। अमित शाह जो कि सरदार पटेल के पदचिन्हों पर चलने का दावा करते हैं, प्रधान मंत्री के बयान को दोहराते हुए बोले कि इलाके में सामान्य हालात लौटते ही जम्मू और कश्मीर को राज्य का दर्जा वापस दे दिया जायेगा (हालांकि किसी को भी इन 'सामान्य' हालातों का मतलब नहीं मालूम है), जो कि उनके हिसाब से जल्द होगा। अमित शाह यह कहते वक्त उतने ही आश्वस्त थे जितने वह संसद में हड़बड़ी में नव संशोधित गैर-कानूनी गतिविधियां (रोकथाम) अधिनियम (यूएपीए) को ढकेलते वक्त थे – कि इस संशोधित कानून का भी कोई दुरुपयोग नहीं होगा जिसमें अब किसी भी व्यक्ति को 'आतंकवादी' करार कर देने के प्रावधान हैं।

मोदी और शाह के दावों के विपरीत, जम्मू और कश्मीर में विकास के कई संकेतक बाकी राज्यों से काफी आगे हैं – जैसे कि खाद्य सुरक्षा, आवास, स्वास्थ्य, शिक्षा और जेंडर। जम्मू और कश्मीर की एक पूर्व सरकारी वार्ता-कर्ता, अकादमिक राधा कुमार भी यह बात मानती हैं कि यह विकास के नाम पर जम्मू और कश्मीर को परोसा हुआ धोखा है जो कि, "पिछली सरकारों के किये गये से कुछ अलग नहीं है।" वह कराहते हुए कहती हैं कि सरकार की इस तरह की नीतियों से 'लोगों पर पैसा फेंककर, उनके राजनैतिक और मानव अधिकार छीने जा रहे हैं!' पर सहमा देने वाली बात यह है कि यह कड़वा सच जिस पर राधा कुमार लिखती हैं, बहुत कम समय में भारत का सच भी बनता जा रहा है।

चाहे वो एनआरसी हो जिसे असम में ढकेला जा रहा है, या फिर वन अधिकार अधिनियम में संशोधन की मांग – यह सारी बातें 'विकास के साथ सुरक्षा' के नाम पर थोपी जा रही हैं। सुरक्षा – अन्दरूनी और बाहरी, दोनों ही दुश्मनों से। और बताया जाता है कि यह विकास ऐसा होगा जैसा कि पिछले 70 सालों में नहीं देखा गया। जीडीपी की इतनी दर होगी कि 2025 तक इस देश की 5 खरब की अर्थव्यवस्था होगी। इस बेरोज़गारी के दौर में, जब फैक्ट्री बंद हो रही हैं, किसानों की बढ़ती आत्महत्या की दर, और जब आदिवासियों को अपने जंगलों से विस्थापित किया जा रहा है – भय आज सबसे ज़्यादा बेचने योग्य वस्तु बन चुका है। अपने पड़ोसी का भय, अन्दरूनी दुश्मन का भय, गाय चोरी होने का भय, लड़कियां/बच्चे चोरी होने का भय, बदलती जलवायु का भय, बाहरी दुश्मन का भय – यह डाटा निर्धारित भय की अर्थव्यवस्था, असल में एक व्यापार का मॉडल है जो कि आज की तारीख में दुनिया का सबसे समृद्ध उद्योग है – खासकर ऐसे संचार में जहां इन्सानों की आज़ादियों की बहुत कम कीमत रह गई है। ज़रूरी है तो सिर्फ जीडीपी।

इसी सन्दर्भ में, मैं आपको एक और राजनैतिक कैदी, बांग्लादेश के शाहिदुल आलम के खयालों पर गौर कराना चाहूंगा, जो कि जाने-माने कलाकार/फोटोग्राफर हैं और साथ ही एक सांस्कृतिक ग्रुप - पाठशाला के संस्थापक भी। यदि उनके विचारों को सांकेतिक शब्दों में बयान किया जाए, वो कहते हैं कि यह ज़रूरी है कि हम एक कदम पीछे हटें और दंड प्रणाली को एक चौड़े लेंस से देखें। मौलिक आवश्यकताएं, जिनका वितरण आम तौर पर 'विकास' का मापक माना जाता है, जेल की परिस्तिथियों में दी नहीं जाती हैं। जबकि जेल में कैद रहना, दंड का एक चरम रूप/तरीका माना जाता है। फिर क्यों कैद से बाहर यह हुक्म मान लिया जाये कि विकास के लिए आज़ादियों को किनारे रखा जा सकता है? उच्चत्तर जीडीपी की तलाश में आज़ादियों को रौंदा जाना अहित है, लेकिन इसे ज़रूरी क्यों माना जाए? जब हमारी कोई आवाज़ नहीं, हमे संवैधानिक अधिकारों से वंचित किया जा रहा है, फिर क्यों हम आज़ाद होने का भ्रम पालें? क्यों भय की आदत डाल लें और चापलूसी को खूबी समझने दें? हमारे मन को जकड़ी हुई ज़ंजीरों को तोड़ डालने के लिए क्या करना होगा?

बीस बाय बीस के इस 'उच्चतम' सुरक्षा जेल के आंगन में कैद, लोहे की जाली की छत के परे मैं आसमान देखता हूं, और एक बार फिर मैं शाहिदुल आलम की मदद से अपनी भावनाओं को महसूस करता हूं, मुझे यकीन है कि वो मुझसे खुश होंगे। "मुझे मेरे साथी योद्धाओं की दोस्ती, प्यार और साथ (कौमराडरी) से वंचित किया गया, पर जब तक कि उनका यह साथ हमारे विचारों को साझा करने की, सवाल करने की और स्वतंत्र रूप से सोचने की क्षमता नहीं लाता, तब तक उनके साथ करीबी भी एक बहकावा होती। आज़ादी एक बहुत दूर का खयाल रह जाएगी।"

12 अगस्त 2019

सलाखों में कैद विचार - वरवरा राव

भीमा कोरेगांव हिंसा, जिसे कि एल्गार परिषद के खिलाफ केस बना दिया, में पुणे के येरवडा सेंट्रल जेल में गैर-कानूनी गतिविधियां (रोकथाम) अधिनियम (यूएपीए) के तहत आने वाले 9 आरोपियों में से मैं आखिरी शख्स था। मैं सुप्रीम कोर्ट द्वारा दिए गए मौके का लाभ उठाने की कोशिश कर रहा था, हैदराबाद हाई कोर्ट में विभिन्न प्रावधानों के तहत राहत के लिए कोशिश कर रहा था और घर में नज़रबंद रहके तीन और हफ्ते रह सकता था। आखिरकार, 17 नवम्बर की रात 8 बजे पुणे पुलिस मुझे गिरफ्तार कर पुणे ले आई, 18 नवम्बर को तीसरे अतिरिक्त सत्र न्यायालय के सामने पेश किया गया और 27 तक पुलिस हिरासत में रखा गया। 27 नवम्बर को मुझे फिर से कोर्ट में पेश किया गया और उसी रात न्यायिक हिरासत में भेज दिया गया। कड़ाके की ठंड में मुझे एक दुःस्वप्न वाली जगह, जिसे 'आफ्टर' कहा जाता है, में रखा गया और 28 नवम्बर की सुबह 'फांसी वार्ड' में स्थानांतरित कर दिया गया। मुंबई का मेरा एक सह-आरोपी 28 अक्टूबर 2018 से वहीं पर था। मुझे उसकी बगल वाली सेल (सेल नंबर 20) में रखा गया था, जो कि आखिरी सेल है और फांसी के तख्ते के ठीक सामने है। दोनों के बीच सिर्फ एक दीवार का फासला है, और वहां से फांसी का फंदा हमेशा दिखाई देता है। यह मुझे सिकंदराबाद ज़िला जेल के 'गंज' (जहां मौत की सज़ा सुनाए गए कैदियों को रखा जाता था) की याद दिलाता है, जिसमें मैं दिसम्बर 1985 से जनवरी 1986 के दौरान रहा था। मैंने देखा है कि फांसी वहां बहुत पहले से थी, जब मैंने 1974 में किसान साथियों भूमैया और किश्त गौड (जो बाद में 1 दिसम्बर 1976 को फांसी पर लटका दिए गए थे) का उन्हें उनकी फांसी की तारीख बता दिए जाने पर इंटरव्यू किया था और एक कविता लिखी थी। 11वें घंटे में सरकार द्वारा उस फांसी को रोक दिया गया था।

हालांकि, यहां स्थानांतरित किए जाने वाले विचाराधीन और आजीवन सज़ायाफ्ता कैदियों की संख्या में एक या दो का उतार-चढ़ाव होता रहता है, लेकिन मौत की सज़ा पाए कैदियों की संख्या हमेशा 20 से अधिक होती है।

उनमें से दो 45 और 50 साल के मुसलमान राजनीतिक कैदी हैं, जिन्हें 2008 के मुंबई ट्रेन धमाका मामलों में झूठा फंसाया गया। गैर-राजनीतिक कैदियों में भी दो मुसलमान हैं। बाकी में से ज़्यादातर दलित, उत्पीड़ित जाति के बेहद गरीब लोग हैं, सिर्फ एक या दो अपवाद हैं। उनमें से कुछ ने बच्चों के बलात्कार जैसे जघन्य अपराध किए होंगे, लेकिन ज़्यादातर निर्दोष हैं, जो उन लोगों के स्थान पर फंसाए गए हैं जो शासन व्यवस्था को प्रभावित कर सकते हैं। उदाहरण के लिए, महाराष्ट्र में दलितों द्वारा एक मराठा युवती का बलात्कार किए जाने से मराठा समुदाय के लोगों में आक्रोश पैदा हो गया था। लेकिन गिरफ्तार किए गए और मौत की सज़ा पाए दोषी दलित निर्दोष युवा हैं। उनमें से एक या दो को छोड़कर सभी की उम्र 25 से 35 वर्ष के बीच है।

इस ब्लॉक में, जिसे अब आधिकारिक तौर पर सुरक्षा ब्लॉक-1 कहा जाता है, मेरी बहुत बड़ी ताकत ये युवा हैं जो अंग्रेज़ी सीख रहे हैं, वॉली बॉल, कैरम, शतरंज खेल रहे हैं और शिल्प, कला, गीत व संगीत के अद्भुत कौशल का प्रदर्शन कर रहे हैं। उनमें से एक की मौत की सज़ा को हाई कोर्ट ने खारिज कर दिया था और उसने जियो और जीने दो की प्रबल भावनाओं के साथ कविता लिखना शुरू कर दिया था, इस उम्मीद से कि उसे सुधारा जा सकता है। लेकिन अब ऐसा लगता है कि समाज, व्यवस्था और संसद का रवैया और अधिक कड़े कानून बनाना व सिर्फ मृत्युदंड में

ही हल ढूंढना है, और यह न्याय प्रक्रिया में भी प्रतिबिम्बित होता है।

एक लेखक और जन-अधिकार कार्यकर्ता होने के नाते मेरा विश्वास है कि इन्सानों, खास तौर से उत्पीड़ित युवाओं में सुधार लाया जा सकता है इसीलिए मैं मृत्युदंड के खिलाफ हूं। मुझे लगता है कि मेरे सभी जेल साथी दूसरों के साथ अपने सम्बन्धों में बहुत मानवीय हैं। मेरे दस महीने की कैद उन लोगों की तुलना में कुछ भी नहीं है, जैसे कि मैं उन्हें देखता हूं, कि वे सालों तक हमारे ब्लॉक से एक साथ बाहर नहीं जा सकते हैं और, जो भी हो और जैसे भी हो वे एकान्त रातें बिताते हुए खुशी से रह रहे हैं। इससे मुझे बहुत ताकत मिलती है कि उनकी गर्दन के चारों ओर फांसी का फंदा झूलता रहता है, फिर भी जिस उम्मीद और चाह से वे जीवन जीते हैं, वो अंधेरी सुरंग के अंत में आशा की एक किरण है।

यही मेरी हर दिन की ऑक्सीजन है, साहित्य और किताबों के अलावा। दिन ब दिन अखबार उनकी आतंकित छवि गढ़ रहे हैं, पर वे एक जीते-जागते इन्सान हैं।

दरअसल, हम में से तीन पेशे से वकील हैं और एक या दो राजनैतिक छात्रों या राजनैतिक कैदियों के रूप में लंबे समय तक जेल में बंद रहने के कारण भारतीय संविधान और समय-समय पर बनाए जा रहे कानूनों, खास तौर से कड़े कानूनों का अध्ययन कर वकील बन गए हैं। विशेष रूप से यूएपीए के सभी संशोधनों से सम्बंधित उनका अध्ययन ताज़ा जानकारी लिए हुए है, जिससे उन्हें हमारे मामले को संज्ञान में लेने के लिए सत्र न्यायालय के अधिकार क्षेत्र को चुनौती देने वाली याचिका दायर करने में सामूहिक रूप से मदद मिली। मृत्युदंड, आपराधिक कानूनों, राजनीतिक कैदियों के खिलाफ कानूनों और राजद्रोह आदि के सम्बन्ध में उनकी समझ पैनी है, और सुप्रीम कोर्ट व अलग-अलग हाई कोर्टों द्वारा दिए जा रहे फैसलों की वे हर रोज़ खबर रखते हैं।

हम में से एक या एक से ज़्यादा लोग दलित अध्ययनों, आदिवासी अध्ययनों, मुस्लिम अल्पसंख्यक अध्ययनों, जेण्डर अध्ययनों में मार्क्सवादी दृष्टिकोण के साथ पूरी तरह शामिल हैं। कुछ की पृष्ठभूमि विज्ञान, कुछ की पर्यावरण अध्ययन, तो कुछ की राजनीतिक अर्थव्यवस्था है।

हम सभी यह अच्छी तरह से समझ सकते हैं कि 31 दिसम्बर 2017 को हुई एल्गार परिषद की बैठक को माओवादियों द्वारा भड़काने और वित्तीय मदद दिए जाने के रूप में क्यों प्रचारित किया गया था जिसके कारण 1 जनवरी 2018 को भीमा कोरेगांव की हिंसा हुई। (जाने-माने लेखक अमिताव घोष ने जेल में मुझे भेजे गए खत में लिखा था कि जब नक्सली आंदोलन चरम पर था तब वह कलकत्ता में एक युवा छात्र के रूप में रहते थे और खुद को उनसे अलग मानते थे। लेकिन, उनका मानना है कि कुछ भी हो जाए, भीमा कोरेगांव हिंसा, 'नक्सली हिंसा' तो नहीं ही है।) राज्य सहित हर कोई जानता है कि यह लोकतंत्रवादियों के अलावा दलित, आदिवासी, मुस्लिम, अन्य पिछड़ा वर्ग और यहां तक कि मराठाओं के एक वर्ग की व्यापक एकता के खिलाफ ब्राह्मणवादी हिन्दुत्व की हिंसक साजिश है।

मैं 5 अगस्त के कोर्ट के एक दिन के अनुभव के साथ अपनी बात खत्म करता हूं, जो हमारे जेल जीवन के हमारे व्यक्तिगत और सामूहिक विचारों और भावनाओं को दर्शाता है। हम सभी, युवा, मध्यम आयु वर्ग के और बुज़ुर्ग बेहद संवेदनशील और भावनात्मक इन्सान हैं, खास तौर पर जेल में रहने के दौरान। कैद में रहते हुए हमने अखबारों को रोज़ाना पढ़ा और किताबों का अध्ययन किया, ताकि कार्रवाई में न सही, कम से कम जानकारी, ज्ञान और समझ में पीछे न रहें। हम राजनीतिक हैं क्योंकि हम इन्सान हैं। पहले बैच के 5 लोगों के लिए जेल की ज़िंदगी 14 महीने से अधिक थी। दूसरे बैच के 4 के लिए यह घर में नज़रबंदी के वक्त से लेकर लगभग एक साल है। यह सिर्फ भावनाओं की तीव्रता में फर्क जैसा है।

हमने फॉरेंसिक प्रयोगशाला से कथित दस्तावेज़ों की मिरर या क्लोन प्रतियों की मांग की थी, कोर्ट ने इसे मान लिया और नासर (कोर्ट की सहायता के लिए प्रशासनिक अधिकारी) के कार्यालय पर आवश्यक सामग्री की कॉपी देखने की व्यवस्था कर दी। हमारी गणना के अनुसार, सभी कॉपियों को उपलब्ध कराने में इस गति से 19 साल लग जाते! बेशक, कोर्ट परिसर की एक अन्य इमारत में अच्छी कुर्सियों, दोपहर के भोजन के लिए वड़ा पाव और चाय, पानी की बोतल, साफ-सफाई और परिवेश जैसी आरामदायक व्यवस्था के साथ एक कोर्ट हॉल है। समस्या सिर्फ यह है कि एस्कॉर्ट के अधिकारी कैदियों की रोज़मर्रा की पहरेदारी की अपनी सदियों पुरानी आदत के कारण इस मामले की तात्कालिकता और समय की कमी को समझ नहीं पाए।

हम 9 को पुरुष जेल के तीन ब्लॉकों और महिला जेल के दो ब्लॉकों में बांटकर रखा गया है। यह एक मौका है जब हम कम से कम 5 से 6 घंटे के लिए मिल सकते हैं। हालांकि, हम में से कुछ हमारे मामले, विभिन्न फैसलों आदि के बारे में हमारे वकीलों से चर्चा करेंगे। दूसरे, लोगों के स्वास्थ्य, भोजन, किताबों, साहित्य और बाहर के घटनाक्रमों के बारे में चर्चा करेंगे क्योंकि हमारे वकीलों को छोड़कर, हमारे किसी भी रिश्तेदार और दोस्तों को कॉपी की प्रक्रिया के दौरान – हमें यहां लाने से लेकर जब तक हमें कोर्ट हॉल में नहीं ले जाया जाता - इस नासर हॉल में आने की इजाज़त नहीं दी जाती है।

बाहर बारिश हो रही थी। हम में से दो लोग ईस्ट इंडिया कंपनी के स्थानीय दलालों – ब्राह्मणवादी हिंदुत्व की सक्रिय भागीदारी - के साथ आने के समय से मुसलमानों को अलग-थलग कर दिए जाने पर लिखे गए के बारे में चर्चा कर रहे थे। हम कई अधिकारियों का ज़िक्र कर रहे थे – 19वीं सदी के बंगाल में सुमंता बनर्जी का लेखन, आदिवासियों की काली दुर्गा का वक्त के साथ उच्च जाति की सफेद दुर्गा में बदल जाना, उनके सांस्कृतिक अध्ययन और प्रोफेसर जीएन साईबाबा (अब नागपुर सेंट्रल जेल की अंडा सेल में कैद हैं) की 6 भारतीय अंग्रेज़ी लेखकों के उपन्यासों पर पीएचडी थीसिस। हमारी ज़्यादातर चर्चा एक कोशिश थी, 'अन्य' – मुस्लिम, दलित और आदिवासी खास तौर पर और आम तौर पर मेहनतकश जनता – के खिलाफ औपनिवेशिक राजशाही के निहित स्वार्थों के लिए ब्राह्मणवादी हिंदुत्व चरित्र को एक दलाल के रूप में पेश करना।

हमारे सह-आरोपियों में से एक ने हास्य और मज़ाकिया मूड में हमारी बात के बीच में हमसे पूछ लिया कि क्या हमने 4 अगस्त की हिंदू संडे मैगज़ीन में जी संपत का कॉलम पढ़ा है। चूंकि हम में से लगभग सभी ने इसे पढ़ा था, तो और लोग भी इस चर्चा में शामिल हो गए। उन्होंने खास तौर पर छोटा वोल्डन मार्ट के बारे में हास्य टिप्पणियां कीं जिसने लोगों को आतंकवादी, राष्ट्र-विरोधी और शहरी माओवादी कहकर प्रचारित किया। वोल्डन मार्ट एक पात्र है और यह स्पष्ट है कि छोटा वोल्डन मार्ट कौन था।

तो अब हम हैरी पॉटर पर चर्चा करने लगे। हम में से कुछ लोगों ने कोई किताब नहीं पढ़ी थी। उन्होंने सुझाव दिया कि यह सिर्फ बच्चों और युवा पीढ़ी के लिए नहीं है, बल्कि युवा पीढ़ी को समझने के लिए हमें उन्हें पढ़ना होगा। वह काफी मज़ाकिया मूड में थीं और हमसे बात करते समय उन्होंने एक कागज़ की चिड़िया बनाई, जिसकी एक छोटी पूंछ और पंख थे। यदि आप पूंछ खींचते हैं तो पक्षी अपने पंखों को हिलाएगा और 'आसमान में उड़ जाएगा', आज़ादी में। वो चिड़िया उन्होंने मुझे दे दी। हमने कुछ समय तक उसके साथ खेला, लेकिन अफसोस, हमारे पास ऐसी पूंछ नहीं है, जिससे हम बिना पंखों के आकाश में उड़ सकें। हर समय, हम जो कुछ भी कर रहे हैं, पढ़ रहे हैं, बात कर रहे हैं, सो रहे हैं, अचेतन में, सपने में, या जागते हुए, हम आज़ादी के लिए तरस रहे हैं। प्रत्येक जीवित वस्तु, ज़्यादा जागरूक इन्सान, दिलों में आज़ादी की गहन इच्छा को संजोता है।

शाम 4 बजे के बाद जब कॉपी करने का काम खत्म हो गया, और इसे सील कर दिया गया तो हमें कोर्ट हॉल ले जाया गया। तब तक हमें पता चला कि सरकारी वकील उस दिन नहीं आए थे। तो कुछ ने कहा कि आज नागपंचमी जो थी। वह उस दिन हमारी तयशुदा जमानत याचिका के लिए अपने पक्ष पर बहस करने वाली थी। जज ने कहा कि उन्होंने लिखित में दिया है कि वह 12 अगस्त तक शहर से बाहर रहेंगी और इसलिए अगली सुनवाई 13 अगस्त को होगी।

इससे पहले कि हमें कोर्ट हॉल में ले जाया जाता, चूंकि जज अन्य मामलों में व्यस्त थे, हमें गार्डों से घिरी बाहरी बेंचों पर बैठना पड़ा। रायपुर, छत्तीसगढ़ से दो जोड़े, जो ज़ाहिर तौर पर मज़दूर वर्ग से थे, एक लंबा सफर तय करके उनसे मिलने आए थे। उन महिला ने उनसे बात करने के लिए एस्कॉर्ट प्रभारी की इजाज़त ले ली थी। प्रभारी ने वहां एक गार्ड की व्यवस्था भी कर दी थी। गार्ड बिना पलक झपकाए सब देख रहा था और बहुत ध्यान से उन्हें सुन रहा था, जब तक कि मैंने देखा नहीं था। जब वह वहां से चला गया और एक अन्य गार्ड को देखने के लिए बोलकर गया तो मैंने ध्यान देना बंद कर दिया। यही वह समय था जब एसीपी (आईओ) अपने मोबाइल पर एक संदेश देखने के लिए बाहर आया और उसने इन चार लोगों को उनसे गार्ड

कला: अरुण फरेरा; कलर्स ऑफ द केज

की नामौजूदगी में बात करते हुए देख लिया। उसने दूर खड़े गार्ड से पूछताछ की और उसे प्रभारी को बुलाने का आदेश दिया। उसने इन लोगों, खास तौर से पुरुषों और बुज़ुर्ग व्यक्ति, जो नेता की तरह दिखते थे, से पूछताछ की। मैं उसे सुन नहीं सका, लेकिन उसकी हावभाव की भाषा समझ सकता था। एस्कॉर्ट प्रभारी बाहर आ गया। ऐसा लग रहा था कि उसे भी फटकार लगी थी। मैंने उन महिला की तरफ देखा, क्योंकि वह आईओ को बेहद गुस्से से देख रही थीं। फिर हमें कोर्ट में बुलाया गया। एस्कॉर्ट और आईओ के साथ हम सभी को कोर्ट हॉल की ओर तेज़-तेज़ जाना पड़ा। हॉल में घुसते से ही वह हमारे वकील के पास गईं और उन्होंने उनसे जज से बात करने की इजाज़त लेने का अनुरोध किया। वह आकर मेरे पास बैठ गईं। उनके मूड और भावनाओं को देखकर मैं यह नहीं पूछ सका कि क्या हुआ। वकील ने जज से अनुरोध किया, लेकिन जज ने एकदम मशीनी होकर उससे कहा कि वह अपने वकील के ज़रिए अपनी बात कहें, चाहे मामला कितना भी ज़रूरी हो। हमारे वकील ने कहा कि उनके वकील नहीं आए हैं। वह पहले से ही गुस्से में थीं। जज ने उनके मूड को भांप लिया और अनिच्छा से उन्हें बोलने की इजाज़त दे दी। वह बेकाबू हवा के जैसे तेज़ी से कटघरे में आईं और शुरू हो गईं। "मेरे माता-पिता नहीं हैं। न ही कोई परिवार। परिवार के रूप में मेरी एक बेटी ही है। मेरे यूनियन कार्यकर्ता मेरे अपने लोग हैं। लंबी दूरी से वे सिर्फ मेरी एक झलक पाने के लिए आए थे। उनके पास उनके पहचान पत्र हैं। पुलिस उनकी जांच कर सकती है। मेरी आपसे सिर्फ इतनी ही गुज़ारिश है कि पुलिस मेरे लोगों को परेशान न करे।" यह बोलकर के उनका मन हल्का हो गया और इसके बाद वह फिर से मेरे पास आकर बैठ गईं। हिम्मत जुटाकर मैंने उससे कहा, "आप बोल सकती थीं कि आप एक वकील हैं और वे आपके मुवक्किल हैं।" उन्होंने महज़ इतना कहा, "अभी मैं नहीं हूं"। चूंकि सरकारी वकील नहीं आया था, इसलिए जज ने सुनवाई की अगली तारीख दी और वारंट पर हस्ताक्षर किए। एस्कॉर्ट पुलिस

हमें ले जाने के लिए आई, पहले महिला गार्ड दो महिला आरोपियों को ले गई और फिर हमारी एस्कॉर्ट हमें ले गई। जब तक हम बाहर निकले तब मुझे वहां वे चार लोग नहीं दिखे जो उन महिला से मिलने आए थे।

मुझे नहीं पता कि वह उन्हें देख पाईं या नहीं। मैं उनसे पूछ नहीं सका क्योंकि उनका एस्कॉर्ट वाहन भी अलग था। जानने का कोई उपाय नहीं था।

अगले दिन एक मराठी अखबार में खबर छपी। खबर में वही लिखा था जो कुछ उन्होंने कोर्ट में कहा था, और मामला स्थगित होने के बाद, शायद मीडिया के लोगों ने वहां मौजूद आईओ या पुलिस अधिकारियों से भी बात की थी। रिपोर्ट के अनुसार, पुलिस ने कहा था कि वे 4 लोग छत्तीसगढ़ मुक्ति मोर्चा के थे। जैसेकि यह उनके लिए एक नई जगह है, उन्हें कुछ नुकसान पहुंच सकता है, और इसी वजह से उन्हें कोर्ट पुलिस चौकी (थाना) ले जाया गया और वहां रखा गया! रिपोर्ट में इस बात का कोई ज़िक्र नहीं था कि बाद में उन्हें छोड़ दिया गया था या नहीं।

पुनश्च: 9 अगस्त को जब हमें फिर से नासर के कार्यालय में लाया गया, तो मैंने उनसे पूछा कि उन 4 लोगों के साथ क्या हुआ था। उन्होंने बताया कि पूछताछ करने और तस्वीरें लेने के बाद उन्हें छोड़ दिया गया होगा। लेकिन हर बार ऐसा ही किया जा रहा है और इस तरह के उत्पीड़न को रोकने के लिए ही मैंने जज के संज्ञान में ये बात लाई थी। अभी इतना ही।

वरवरा राव की जेल से लिखी हुई हिंदी में कविता

मुझे लॉक करते हुए
गार्ड ने अपनी भाषा में
कुछ पूछा,
मैंने कहा
'हिन्दी में बोलिए'
'किस केस में आये हो?'
ऐल्गार
उसकी भाषा में ही मैंने जवाब दिया।
'वो कोई केस है?
वो तो पुकार है,
आवाज़।'
उसका सवाल था।
'मैं वही कहना चाहता था
कि वो एक कवि की आवाज़ है,
जनता को पुकारती हुई।'
'लेकिन क्राइम क्या है?'
'मैं कवि हूँ
ओह...ऐसा कहो..
कि तुम कलम के मुल्ज़िम हो।'
'नहीं, मैं कलम का सिपाही हूं।'
वो सिपाही यह समझे
वह समय भी आयेगा
वह समय फिर से आयेगा।

गौतम नवलखा का पत्र - 14 अप्रैल 2020

आज जब मैं दिल्ली में स्थित एनआईए हेडक्वार्टर में आत्मसमर्पण करने के लिए घर से निकलने की तैयारी में हूं, मुझे खुशी है कि जस्टिस अरुण मिश्रा और जस्टिस इंदिरा बैनर्जी ने मुझे 8 अप्रैल के अपने आदेश के द्वारा एक और हफ्ते की आज़ादी दी। लॉकडाउन के दौर में मेरे जैसे हालात वाले किसी व्यक्ति के लिए एक हफ्ते की आज़ादी के बहुत मायने हैं। उनके इस आदेश ने मेरे लिए उन परिस्थितियों को हल किया जिनके कारण मैं एनआईए, मुंबई के समक्ष 6 अप्रैल को आत्मसमर्पण नहीं कर पाया था, जिसका आदेश सुप्रीम कोर्ट ने 16 मार्च को दिया था। लॉकडाउन के कारण मैं यात्रा नहीं कर सकता था। न ही एनआईए, मुंबई की तरफ से कोई निर्देश थे कि मुझे इन परिस्थितियों में क्या करना चाहिए। मैं जानता हूं कि अब मुझे एनआईए हेडक्वार्टर, दिल्ली पर आत्मसमर्पण करना है।

भारत के प्रधान मंत्री ने कोविड-19 महामारी द्वारा ढाए गए संकटों को 'राष्ट्रीय आपातकाल' जैसा बताया है। इस बीच सुप्रीम कोर्ट ने स्वयं जेलों में उपस्थित संकटपूर्ण परिस्थितियों के मामले में हस्तक्षेप करते हुए दिशानिर्देश जारी किए हैं, जिससे कि देश के खचाखच भरे जेलों में भीड़ कम हो सके, और कैदियों, जेल कर्मचारियों और जेल सेवाओं से जुड़े अन्य लोगों को होने वाले संकट से बचाया जा सके। यह चिन्ता का विषय है, पर क्योंकि अब तक जेलों से कोविड-19 के किसी भी मामले की खबर नहीं आई है, तो मैं थोड़ा-बहुत आश्वस्त हूं। क्योंकि कोविड-19 के दौर में मुझे जेल भेजा जा रहा है, इसलिए मेरे करीबी लोगों को हो रही चिन्ता मुझे प्रभावित कर रही है। ऐसे में सुप्रीम कोर्ट के 8 अप्रैल के आदेश में कोविड-19 महामारी पर चुप्पी बेहद निराशाजनक है, जबकि पूरा विश्व और भारत भी इस महामारी से जूझ रहा है।
खैर, अब मुझे भी उस कानूनी प्रक्रिया का सामना शुरू करना है जहां गैर-कानूनी गतिविधियां (रोकथाम) अधिनियम (यूएपीए) का प्रयोग किया जाता है। ऐसे अधिनियम सामान्य न्याय प्रणाली को सिर के बल खड़ा कर देते हैं। इसके तहत चलाई गई कार्यवाहियों में अब यह सिद्धांत बेमानी है कि "व्यक्ति तब तक निर्दोष है जब तक वह दोषी साबित न हो जाए।" बल्कि इन कानूनों के तहत "व्यक्ति तब तक दोषी है जब तक वह निर्दोष साबित न हो जाए।"

जहां एक तरफ यूएपीए में कड़ी सज़ा और अन्य बेरहम प्रावधान हैं, वहीं दूसरी ओर इसमें साक्ष्य (खास तौर पर इलेक्ट्रॉनिक साक्ष्य) के लिए प्रावधान सख्त होने की बजाय काफी ढीले हैं। आम कानूनों के अंतर्गत जो साक्ष्य नियम ज़्यादा सख्त होते हैं, यूएपीए के तहत लचीले बनाए गए हैं। इस दोहरे प्रहार के चलते, जेल ही तकदीर बन जाता है और ज़मानत मिलना अपवाद। ऐसी भयावह 'काफकाई' स्थिति में पूरी प्रक्रिया ही एक सज़ा बन जाती है।

मेरी उम्मीद बस अब मेरे और मेरे सह-आरोपियों के लिए एक त्वरित और निष्पक्ष सुनवाई पर टिकी हुई है। सिर्फ इसी के बल पर मैं खुद पर लगे आरोपों को खारिज कर पाऊंगा और आज़ाद हो पाऊंगा। साथ ही उम्मीद है कि जेल में बिताए हुए वक्त में अपनी कुछ आदतें छोड़ पाऊंगा।

तब तक,

"क्या तुम मदद नहीं करोगे आज़ादी के गीत गाने में
कि यही तो है मेरे पास हमेशा से
मुक्ति के गीत
मुक्ति के गीत
ये आज़ादी के गीत..."
(बॉब मार्ली)

आनंद तेलतुंबड़े का खुला पत्र - 14 अप्रैल 2020

मैं एनआईए की हिरासत में जा रहा हूं और नहीं जानता कब आपसे वापस बात कर पाऊंगा। लेकिन, यह दिल से उम्मीद है कि आपकी बारी आने से पहले आप बोल उठोगे।

मुझे पता है कि भाजपा-आरएसएस के गठबंधन और आज्ञाकारी मीडिया के इस उत्तेजित कोलाहल में यह पूरी तरह से गुम हो सकता है, लेकिन मुझे फिर भी लगता है कि आपसे बात करनी चाहिए क्योंकि मुझे नहीं पता कि अगला मौका मिलेगा या नहीं।

अगस्त 2018 से जब पुलिस ने गोवा इंस्टीट्यूट ऑफ मैनेजमेंट की फैकल्टी हाउसिंग कॉम्प्लेक्स में मेरे घर पर छापा मारा, मेरी पूरी दुनिया ही तितर-बितर हो गई।

अपने बुरे से बुरे सपने में भी मैंने कभी नहीं सोचा था कि मेरे साथ ये सब होगा। हालांकि मुझे ये पता था कि पुलिस मेरे लेक्चर को लेकर आयोजकों - खासकर विश्वविद्यालयों - से मेरे बारे में जांच-पड़ताल कर उन्हें डराती थी। मुझे लगा कि वे शायद मुझे मेरा भाई समझने की गलती कर रहे हैं, जो सालों पहले परिवार छोड़ गए थे।

जब मैं आईआईटी खड़गपुर में पढ़ा रहा था, तो बीएसएनएल के एक अधिकारी ने खुद को मेरा प्रशंसक और शुभचिंतक बताते हुए फोन किया और मुझे सूचित किया कि मेरा फोन टैप किया जा रहा है। मैंने उन्हें धन्यवाद दिया लेकिन कुछ नहीं किया, मैंने अपना सिम भी नहीं बदला।

मैं इन अनुचित दखलअंदाज़ी से परेशान था लेकिन खुद को तसल्ली देता था कि इससे पुलिस खुद समझ सकेगी कि मैं एक 'सामान्य' व्यक्ति हूं और मेरे आचरण में अवैधता का कोई तत्व नहीं है।

पुलिस ने आम तौर पर नागरिक अधिकार कार्यकर्ताओं को नापसंद किया है क्योंकि वे पुलिस पर सवाल उठाते हैं। मैंने सोचा कि ये सब इस कारण से हो रहा है कि मैं उसी समुदाय से था। लेकिन फिर मैंने खुद को दिलासा दिया कि वे पाएंगे कि मैं नौकरी में पूरा समय देने के कारण उस भूमिका (नागरिक अधिकार कार्यकर्ता) को नहीं निभा पा रहा हूं।

लेकिन जब मुझे अपने संस्थान के निदेशक का सुबह फोन आया, तो उन्होंने मुझे बताया कि पुलिस ने परिसर में छापा मारा है और मुझे ढूंढ रही है, मैं कुछ सेकंड के लिए अवाक रह गया। मुझे कुछ घंटे पहले ही एक ऑफिशियल काम के लिए मुंबई आना पड़ा था और मेरी पत्नी पहले ही आ गई थीं।

जब मुझे उन व्यक्तियों की गिरफ्तारी के बारे में पता चला, जिनके घरों पर उस दिन छापा मारा गया था, तो मैं इस एहसास से हिल गया था कि मैं बहुत करीबी से गिरफ्तार होने से बच गया हूं। पुलिस को मेरे ठिकाने का पता था और वह मुझे तब भी गिरफ्तार कर सकती थी, लेकिन ऐसा उन्होंने क्यों नहीं किया ये उन्हें ही पता होगा।

खैर, मैं एनआईए की हिरासत में जाने वाला हूं और मुझे नहीं पता कि मैं आपसे कब बात कर पाऊंगा।

हालांकि, मुझे बेहद उम्मीद है कि आप अपनी बारी आने से पहले बोलेंगे।

उन्होंने सुरक्षा गार्ड से जबरन डुप्लीकेट चाबी ली और हमारे घर को भी खोल दिया, लेकिन सिर्फ इसकी वीडियोग्राफी की और इसे वापस लॉक कर दिया।

हमारी कठिन परीक्षा की शुरुआत तभी हो गई। वकीलों की सलाह पर मेरी पत्नी ने गोवा के लिए अगली उपलब्ध फ्लाइट ली और बिचोलिम पुलिस स्टेशन में इस कृत्य के खिलाफ शिकायत दर्ज कराई कि पुलिस ने हमारी गैर-मौजूदगी में हमारा घर खोला था और अगर उन्होंने वहां कुछ भी प्लांट किया होगा तो हम ज़िम्मेदार नहीं होंगे। मेरी पत्नी ने खुद ही फोन नंबर दिया ताकि पुलिस इसकी जांच कर सके।

अजीब बात है कि पुलिस ने 'माओवादी कहानी' शुरू करने के तुरंत बाद प्रेस कॉन्फ्रेंस करना शुरू कर दिया था। यह स्पष्ट रूप से कृतज्ञ मीडिया की मदद से मेरे और गिरफ्तार किए गए अन्य लोगों के खिलाफ जनता में पूर्वाग्रह को उत्तेजित करना था। इस तरह के एक संवाददाता सम्मेलन में 31 अगस्त 2018 को एक पुलिस अधिकारी ने गिरफ्तार किए जा चुके लोगों के कम्प्यूटर से कथित तौर पर बरामद एक पत्र को मेरे खिलाफ सबूत के रूप में पढ़ा।

मेरे द्वारा एक शैक्षणिक सम्मेलन में भाग लेने की जानकारी को जोड़ते हुए इस पत्र को बेढंग अंदाज़ में लिखा गया था, ऐसी जानकारी जो पेरिस के अमेरिकी विश्वविद्यालय की वेबसाइट पर आसानी से उपलब्ध थी। शुरू में मैं इस पर हंसा, लेकिन इसके बाद मैंने इस अधिकारी के खिलाफ एक सिविल और आपराधिक मानहानि का मुकदमा दायर करने का फैसला किया और प्रक्रिया के अनुसार मंज़ूरी के लिए 5 सितम्बर 2018 को महाराष्ट्र सरकार को एक पत्र भेजा।
इस पत्र पर आज तक सरकार की ओर से कोई जवाब नहीं आया है। हालांकि हाई कोर्ट द्वारा फटकार के बाद तब पुलिस के प्रेस कॉन्फ्रेंस पर रोक लगाई गई।

इस पूरे मामले में आरएसएस की भूमिका छिपी नहीं थी। मेरे मराठी मित्रों ने मुझे बताया कि उनके एक कार्यकर्ता रमेश पतंगे ने, अप्रैल 2015 में आरएसएस के मुखपत्र पांचजन्य में एक लेख लिखा था जिसमें उन्होंने अरुंधति रॉय और गेल ओमवेट के साथ मुझे 'मायावी अम्बेडकरवादी' बताया था।

हिंदू पुराणों के अनुसार 'मायावी' उस राक्षस को कहते हैं जिसे खत्म किया जाना चाहिए। जब मुझे सुप्रीम कोर्ट के संरक्षण में होने के बावजूद पुणे पुलिस ने अवैध रूप से गिरफ्तार किया था, तब हिंदुत्व ब्रिगेड के एक साइबर-गिरोह ने मेरे विकीपीडिया पेज के साथ छेड़छाड़ की। यह पेज एक पब्लिक पेज है और सालों से मुझे इसकी जानकारी भी नहीं थी।

उन्होंने पहले सभी जानकारी हटाई, और सिर्फ इतना लिखा, "उसका एक माओवादी भाई है...उसके घर पर छापा हुआ है...माओवादियों के साथ नाता होने के कारण उनकी गिरफ्तारी हुई है," इत्यादि। कुछ विद्यार्थियों ने बाद में बताया कि वो जब भी इस पेज को वापस लाने की कोशिश करते, या कुछ बदलाव करते, यह गिरोह तत्परता से तुरंत उसे हटा देता और कुछ अपमानजनक सामग्री चिपकायी जाती।

अंततः, विकीपीडिया ने हस्तक्षेप किया और मेरे पेज को ठीक किया गया, हालांकि इसमें उनकी कुछ नकारात्मक सामग्री भी जोड़ी गई।

संघ परिवार के तथाकथित 'नक्सली विशेषज्ञों' के माध्यम से सभी प्रकार की झूठी अफवाहों के ज़रिये मीडिया ने हमला किया। चैनलों के खिलाफ और यहां तक कि इंडिया ब्रॉडकास्टिंग फाउंडेशन तक को भेजी गई मेरी

शिकायत का कोई जवाब नहीं आया। फिर अक्टूबर 2019 में पेगासस कहानी सामने आई। सरकार ने मेरे फोन पर एक बहुत ही खतरनाक इज़रायली स्पाइवेयर डाला था। इसे लेकर थोड़ी देर मीडिया में उथल-पुथल ज़रूर हुई, लेकिन ये गंभीर मामला भी चैनलों से गायब हो गया।

मैं एक साधारण व्यक्ति हूं जो ईमानदारी से अपनी रोटी कमा रहा है और अपने लेखों के ज़रिये अपनी जानकारी से लोगों की हरसंभव मदद कर रहा है। पिछले पांच दशकों से इस कॉरपोरेट दुनिया में एक शिक्षक के रूप में, एक नागरिक अधिकार कार्यकर्ता के रूप में और एक बुद्धिजीवी के रूप में इस देश की सेवा करने का मेरा बेदाग रिकॉर्ड है।

अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रकाशित हुईं मेरी 30 से अधिक किताबों, कई पत्रों, लेखों, टिप्पणियों, कॉलमों, साक्षात्कारों में कहीं भी मुझे हिंसा या किसी भी विध्वंसक आंदोलन का समर्थन करते हुए नहीं पाया जा सकता है। लेकिन अपने जीवन के इस अंतिम छोर पर मुझ पर यूएपीए के तहत जघन्य अपराधों के आरोप लगाए जा रहे हैं।

बिलकुल, मेरे जैसा व्यक्ति सरकार और उसके अधीन मीडिया के उत्साही प्रोपेगेंडा का मुकाबला नहीं कर सकता है। मामले का विवरण पूरे इंटरनेट पर फैला हुआ है और किसी भी व्यक्ति के समझने के लिए पर्याप्त सामग्री है कि यह एक फूहड़ और आपराधिक छलरचना है।

एआईएफआरटीई वेबसाइट पर एक सारांश नोट पढ़ा जा सकता है। आपकी सहूलियत के लिए मैं इसे यहां प्रस्तुत करूंगा।

मुझे उन 13 में से पांच पत्रों के आधार पर फंसाया गया है, जो पुलिस ने कथित तौर पर मामले में गिरफ्तार दो लोगों के कम्प्यूटरों से बरामद किए हैं। मेरे पास से कुछ भी बरामद नहीं हुआ। इस पत्र में भारत में एक सामान्य नाम 'आनंद' का उल्लेख है, लेकिन पुलिस ने बेझिझक मान लिया कि ये मैं ही हूं।

इन पत्रों को विशेषज्ञों और यहां तक कि सुप्रीम कोर्ट में एक न्यायाधीश द्वारा भी खारिज कर दिया गया है, जो पूरी न्यायपालिका में एकमात्र जज थे जिन्होंने सबूतों की प्रकृति पर बात की, बावजूद इसके इसमें कुछ भी ऐसा नहीं लिखा था जो किसी सामान्य अपराध के दायरे में भी आता हो।

लेकिन कठोर यूएपीए कानून के प्रावधानों का सहारा लेते हुए मुझे जेल में डाला जा रहा है, एक ऐसा कानून जो इन्सान को निस्सहाय बना देता है।

आपकी समझ के लिए यहां पर केस का विवरण दिया जा रहा है:

अचानक, एक दिन पुलिस आपके घर पर आती है और बिना किसी वॉरंट के आपके घर में तोड़फोड़ करती है। अंत में, वे आपको गिरफ्तार करते हैं और आपको पुलिस लॉकअप में बंद करते हैं।

कोर्ट में वे कहेंगे कि xxx जगह में चोरी (या किसी अन्य शिकायत) मामले की जांच करते समय (भारत में किसी भी स्थान पर विकल्प) पुलिस ने yyy से एक पेन ड्राइव या एक कम्प्यूटर (किसी भी नाम का विकल्प) बरामद किया जिसमें कुछ प्रतिबन्धित संगठन के एक कथित सदस्य द्वारा लिखे कुछ पत्र मिले, जिसमें zzz का उल्लेख था जो पुलिस के अनुसार आपके अलावा कोई नहीं है।

वे आपको एक गहरी साज़िश के हिस्से के रूप में प्रस्तुत करते हैं। अचानक आप पाते हैं कि आपकी दुनिया उलट-पुलट हो गई, आपकी नौकरी चली गई है, परिवार टूट रहा है, मीडिया आपको बदनाम कर रहा है, जिसके बारे में आप कुछ नहीं कर सकते।

पुलिस न्यायाधीशों को समझाने के लिए

'सीलबंद लिफाफे' में डिटेल देगी कि आपके खिलाफ एक प्रथमदृष्टया मामला है, जिसमें हिरासत में पूछताछ की ज़रूरत है।

कोई सबूत न होने के बारे में कोई तर्क नहीं दिया जाएगा क्योंकि न्यायाधीशों का जवाब होगा कि ट्रायल के दौरान इस पर ध्यान दिया जाएगा। हिरासत में पूछताछ के बाद, आपको जेल भेज दिया जाएगा।

आप ज़मानत के लिए भीख मांगते हैं और कोर्ट आपकी याचिका को खारिज कर देंगी जैसा कि ऐतिहासिक आंकड़े दिखाते हैं कि ज़मानत मिलने या बरी होने से पहले, कैद की औसत अवधि 4 से 10 साल तक है।

और ऐसा ही हूबहू किसी के साथ भी हो सकता है। 'राष्ट्र' के नाम पर, ऐसे कठोर कानून जो निर्दोष लोगों को उनकी स्वतंत्रता और सभी संवैधानिक अधिकारों से वंचित करते हैं, संवैधानिक रूप से मान्य हैं।

लोगों की असहमति को कुचलने और ध्रुवीकरण के लिए राजनीतिक वर्ग द्वारा कट्टरता और राष्ट्रवाद को हथियार बनाया गया है। बड़े पैमाने पर उन्माद को बढ़ावा मिल रहा और शब्दों के अर्थ बदल दिए गए हैं, जहां राष्ट्र के विध्वंसक देशभक्त बन जाते हैं और लोगों की निस्वार्थ सेवा करने वाले देशद्रोही हो जाते हैं।

मैं देख रहा हूं कि मेरा भारत बर्बाद हो रहा है, इस तरह के डरावने क्षण में एक उम्मीद के साथ लिख रहा हूं।

खैर, मैं एनआईए की हिरासत में जाने वाला हूं और मुझे नहीं पता कि मैं आपसे कब बात कर पाऊंगा।

हालांकि, मुझे बेहद उम्मीद है कि आप अपनी बारी आने से पहले बोलेंगे।

एकजुट होते संघर्ष और प्रखर होते इरादे: विश्वविद्यालयों में हाल ही में उभरी हुई अशांति पर एक नज़र - हेनीबाबू एम टी

विश्वविद्यालयों को अक्सर एक समतावादी स्थान के रूप में देखा जाता है जो आज़ाद सोच और अभिव्यक्ति को प्रोत्साहित करते हैं। मगर आज हमारा ध्यान बार-बार उसकी आज़ादी पर हो रहे हमलों की ओर आकर्षित होता है। सच तो यह है कि कोई भी विश्वविद्यालय शायद ही कभी समाज के प्रभावी पूर्वाग्रहों या विचारधाराओं के नियंत्रण से मुक्त होता है। इसका जीवंत प्रमाण इन जगहों से आ रहे विरोधी स्वर या बदलाव के लिए हो रहे कोलाहल से मिलता है। यह लेख हाल ही में विश्वविद्यालयों में छात्र समूहों के संगठन में आ रहे बदलावों से उत्पन्न इसी अशांति को जांचने की कोशिश करता है।

जहां एक तरफ वी पी सिंह की सरकार द्वारा मंडल कमीशन रिपोर्ट लागू करने से (जिसे मंडल 1 कहा जाता है) जाति की काली छाया को उच्च जाति के संवाद में लाया गया और उच्च जाति से होना अचानक से सरकारी नौकरी पाने के लिए एक गैर-हकदार स्थान बन गया, वहीं दूसरी तरफ 93वां संवैधानिक संशोधन जिसने सरकार को "सामाजिक और आर्थिक रूप से पिछड़ी जातियों की प्रगति के लिए" सहायता युक्त एवं बिना-सहायता निजी शिक्षण संस्थाओं में प्रवेश हेतु खास प्रावधान बनाने की जगह दी है जिसका परिणाम ये है कि शिक्षा में उच्च जाति की मज़बूत पकड़ को बड़ी चुनौती मिली है। इन दोनों परिस्थितियों में उच्च जाति के छात्र समूहों ने सड़कों पर विरोध प्रदर्शन करना शुरू किया और मुख्यधारा मीडिया ने इन प्रदर्शनों का विस्तार में प्रसार किया।

इसके बाद के सालों में दलित विद्यार्थियों के खिलाफ इन उच्चतम शिक्षण संस्थाओं में होने वाले भेदभाव और इसके चलते उनकी आत्महत्या की अनेक घटनाएं सामने आई हैं। हालांकि जब भेदभाव आरक्षण नीति के उल्लंघन के रूप में हुआ तब मुख्यधारा के 'उच्च-जातीय' छात्र समूहों, ने कोई विरोध प्रदर्शन नहीं किये। उदाहरण के लिए, ओबीसी आरक्षण के शुरुआती सालों में जब दिल्ली विश्विद्यालय ने ओबीसी आरक्षण नियमों का उल्लंघन कर हज़ारों ओबीसी सीट को जनरल वर्ग की सीट में तब्दील कर दिया, तब किसी भी छात्र समूह ने अपनी आवाज़ नहीं उठाई। सिर्फ कुछ गिने-चुने समूह इस सामाजिक न्याय के मुद्दे पर साथ आए और उन्होंने सड़कों पर और न्यायालयों में यह लड़ाई लड़ी। दलितों की आत्महत्या पर भी उसी तरह का तुच्छ ध्यान दिया गया जो जाति आधारित अत्याचार (जैसेकि खैरलांजी) को दिया जाता है। इन घटनाओं पर कोई भी अभियान नहीं चला।

हालांकि ऐसे दो अवसर हुए हैं जो इस प्रवृति के परे गए हैं। इन दोनों अवसर पर संघर्ष की शुरुआत दलित बहुजन समूहों ने की जिसकी गूंज का एहसास बड़े स्तर पर हुआ।

पहला अवसर वह था जो आईआईटी मद्रास में शुरू हुआ। वहां की अम्बेडकर पेरियार स्टडी सर्किल को यह कहकर अमान्य घोषित किया गया कि वे कथित तौर पर केंद्र सरकार की नीतियों पर विरोध भड़का रहे थे और हिंदुओं के खिलाफ नफरत फैला रहे थे। इस घटना ने ना केवल व्यापक तौर पर ध्यान आकर्षित किया बल्कि इससे आईआईटी

के अधिकारियों की कार्रवाई के खिलाफ भी खासा विरोध हुआ। एक ऑनलाइन याचिका पर एक हफ्ते के अंदर 7500 हस्ताक्षर आ गए और कई बड़ी पत्रिकाओं में इस पर लेख छपे। याकूब मेमन (जिसको मुंबई धमाकों में उसके जुड़ाव के कारण फांसी की सज़ा सुनाई गयी थी) की फांसी के बाद हैदराबाद विश्वविद्यालय में होने वाली घटनाएं और जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में अफ़ज़ल गुरु की फांसी के बाद हुए विरोध प्रदर्शन भी एक दिलचस्प कहानी हैं।

अम्बेडकर स्टूडेंट्स एसोसिएशन (एएसए – एक दलित और मुस्लिम छात्रों का समूह) ने एक विरोध प्रदर्शन आयोजित किया और उसके बाद होने वाली घटनाओं का अंत था रोहित वेमुला की आत्महत्या, जो कि समूह के सक्रिय सदस्य थे। दलितों की आत्महत्या के अन्य अवसरों के विपरीत, रोहित वेमुला की आत्महत्या से देशभर में आक्रोश उठा और हर तरह की संस्था (सत्तारूढ़ गेरुआ टोली के अलावा सभी) ने और उनके नेताओं ने अभियान में भाग लिया। इस मुद्दे ने संसद में भी हंगामा मचा दिया जब एचआरडी मंत्री ने सत्ता पक्ष का बचाव करने की कोशिश की।

जेएनयू में अफ़ज़ल गुरु की फांसी पर हुए विरोध प्रदर्शन हैदराबाद विश्वविद्यालय की घटनाओं को दोहराने जैसा था, बस अंतर इतना ही था कि यहां पर मुख्य खिलाड़ी लेफ्ट रेडिकल समूह से थे। हालांकि जब लगने लगा था कि यह एक उचित अवसर है दो विपरीत गुटों के बीच एक गठबंधन बनाने का, जो उच्च जाति सरकार के वर्चस्व के खिलाफ लड़े, इनके बीच दरारें जल्द ही दिखने लगीं। जब जेएनयू के खिलाफ ये आरोप लगाया जाने लगा कि उन्होंने सारा यश अपनी तरफ ले लिया जिससे रोहित वेमुला का मुद्दा दरकिनार हो गया। इसके बाद जेएनयू छात्र संघ द्वारा आयोजित बैठक जिसमें पक्षपात के खिलाफ बिल ('रोहित एक्ट' नामक) को ड्राफ्ट करना था, को इन आरोपों के चलते रद्द करना पड़ा क्योंकि बिल में मुख्य हितधारक (जो कि दलित बहुजन थे) इस प्रक्रिया में शामिल नहीं थे।

एक बड़े संगठन की ना बनने की असफलता के पीछे मुख्य कारण है ज़मीनी स्तर पर एकता की कमी, अलग-अलग संघर्षों के स्तर पर। मैं तर्क रखना चाहता हूं कि दलित बहुजन समूहों का संघर्ष मूल रूप से समानता प्राप्त करने का संघर्ष है जिसमें शिक्षा और रोज़गार के समान अवसर को आरक्षण से हासिल किया जा सके। आंकड़े दिखाते हैं कि आरक्षण का संवैधानिक प्रावधान होने के बावजूद, दलित, बहुजन और अन्य अल्पसंख्यक गुटों का शिक्षा और रोज़गार में प्रतिनिधित्व उनकी जनसंख्या के अनुपात के हिसाब से बहुत ही कम है। यह बिलकुल आश्चर्यजनक नहीं है कि अपराधी और दोषी ठहराए गए लोगों में इनका 'प्रतिनिधित्व' पर्याप्त से ज़्यादा है। साथ ही साथ हमने कभी किसी बड़े स्तर पर किये गए विरोध प्रदर्शन के बारे में नहीं सुना है जो एससी, एसटी, ओबीसी के उच्च शिक्षण संस्थान से हो रहे व्यवस्थागत बहिष्कार के खिलाफ हों। इसके विपरीत, विरोध उच्च शिक्षण संस्थान में आरक्षण के प्रस्ताव के खिलाफ हुए हैं।

एक तरह से आईआईटी मद्रास के एपीएससी का संघर्ष और हैदराबाद विश्वविद्यालय के एएसए का संघर्ष हमारे विश्वविद्यालयों में दलित बहुजन छात्र राजनीति की परिपक्वता का परिणाम हैं, जहां के पहले के संघर्ष समानता के लिए थे ताकि आरक्षण लागू किया जाए और पक्षपात खत्म हो। जो संघर्ष आईआईटी मद्रास में एपीएससी के प्रतिबन्ध पर हुए और जो हैदराबाद विश्वविद्यालय में एएसए के मुद्दों पर हुए वे बोलने और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर ही आधारित थे। यह परिवर्तन इन समूहों की तैयारी दिखाता है कि अब वे ऐसे मुद्दे उठाएंगे जो कि सभी नागरिकों के मुद्दे हैं ना कि केवल कुछ वर्गों के (जैसे एससी, एसटी, ओबीसी)। दिलचस्प बात यह है कि कानूनी संवाद में भी ऐसा ही एक अंतर बनाया जाता है समानता के

अधिकार और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार के बीच।

संवैधानिक प्रावधान एक अंतर बनाता है कि कौन-से अधिकार 'नागरिकों' के लिए उपलब्ध हैं और कौन-से 'लोगों' के लिए। जबकि अनुच्छेद 14 के तहत कानून के सामने समानता सभी लोगों का अधिकार है, जो स्वतंत्रता अनुच्छेद 19 में दी गई है (बोलने और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता जिसका हिस्सा है), वे सिर्फ नागरिकों को दी गयी हैं। हालांकि अधिकार के स्तर पर कौन नागरिक है और कौन नहीं का पक्षपात अच्छी तरह से स्थापित परंपरा है। अलग-अलग देशों में अंतर है कि कौन-से अधिकार नागरिकों को दिए गए हैं और कौन-से गैर-नागरिकों को। उदाहरण के लिए, यूनाइटेड स्टेट्स में बोलने और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता गैर-नागरिकों को भी दी गयी है। निश्चित तौर पर बोलने और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को राजनैतिक अधिकारों की तरह देखा जाता है और भारतीय संविधान ऐसे राजनैतिक अधिकार गैर-नागरिकों को नहीं देता।

दलित बहुजन जो ज़िंदगी के हर पहलू में पक्षपात से पीड़ित हैं, अभी भी 'समानता' के लिए संघर्ष कर रहे हैं, और प्रभावी छात्र समूह इस संघर्ष में भाग नहीं लेते क्योंकि अपनी पहचान की वजह से पक्षपात कुछ ऐसा नहीं है जिसके बारे में उन्हें सावधान रहना है। लेकिन जब बात बोलने और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर आती है तो वहां उन्हें खतरा महसूस होता है। समान नागरिक होने के नाते वे अपने स्वतंत्रता के अधिकार के लिए बहुत सतर्क हैं। इसका मतलब यह नहीं है कि बोलने और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता दलित बहुजन के लिए मुद्दा नहीं है। बस इतना है कि मौलिक आवश्यकताओं की लड़ाई लड़ने में वे ज़्यादा व्यस्त हैं। इसी प्रकार की उदासीनता धार्मिक अल्पसंख्यकों और आदिवासियों में देखी जा सकती है जिन्हें आतंकवाद और राज्य की सुरक्षा के नाम पर गैर-कानूनी तरीके से गिरफ्तार किया जाता है और लम्बे समय तक कैद में रखा जाता है।

एनसीईआरटी की किताब में अम्बेडकर के ऊपर बनाए गए कार्टून पर हुआ विवाद (जो आईआईटी मद्रास और हैदराबाद विश्वविद्यालय की घटनाओं से पहले हुआ था) एक अलग पहलू सामने रखता है। इस मामले में दलित बहुजन समूह चाहते थे कि कार्टून हटाया जाए क्योंकि वह अम्बेडकर का अपमान माना जा रहा था। इस घटना में उच्च जाति के लिबरल समूहों ने दलित बहुजन समूहों का साथ नहीं दिया। उल्टा उन्होंने यह नज़रिया अपनाया कि अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता सबसे ऊपर है और इसमें समझौता नहीं किया जा सकता। यह उनकी कल्पना से परे था कि कुछ तरह की स्वतंत्रताओं का नियंत्रण करना हाशिए पर पड़े समूहों की सुरक्षा के लिए ज़रूरी है, उसी तरह जैसे सामाजिक, आर्थिक या शैक्षिक रूप से पिछड़े समूहों की सुरक्षा के लिए समानता में अन्य सामाजिक समूहों के लिए असमान व्यवहार है। ऐसी कल्पना की कमी सुविधाभोगी लोगों में न होना कोई बड़ी बात नहीं है खास तौर पर जिनको अपने विशेषाधिकारों की वजह से बोलने या अभिव्यक्ति की आज़ादी के छिन जाने का कम खतरा है।

हाल में हुए बदलावों में, ह्यूमन राइट्स वॉच, एक संस्था जो रिसर्च और एडवोकेसी का काम करती है, ने अपनी 2016 की रिपोर्ट में शिड्यूल कास्ट्स एंड शिड्यूल ट्राइब्स (प्रीवेंशन ऑफ एट्रोसिटीज़) एक्ट, 1989 को एक ऐसा कानून कहा जो अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता रोकता है। रिपोर्ट में इस कानून में 2015 में हुए संशोधन पर आपत्ति उठाई गई है, जो कहता है कि ऐसी किसी भी अभिव्यक्ति पर रोक लगायी जानी चाहिए जो "अनुसूचित जाति या जनजाति समुदाय के सदस्यों की तरफ शत्रुता, नफरत और बैर को बढ़ावा देती है या देने की कोशिश करती है" और जो "किसी ऐसे मृतक व्यक्ति का अपमान करती है जो अनुसूचित जाति या जनजाति समुदाय के लिए महत्वपूर्ण हैं।"

यह दर्ज करना दिलचस्प है कि इस रिपोर्ट के मुताबिक प्रीवेंशन ऑफ एट्रोसिटीज़ एक्ट को सेडीशन लॉ (भारतीय दंड संहिता की धारा 124A) जैसे कठोर कानूनों के साथ रखा गया है। जो यहां पर छूट जाता है वह यह है कि जहां पहला कानून हाशिए पर खड़े समुदायों की सुरक्षा के लिए है, दूसरा कानून सरकार की सत्ता को बरकरार रखने के लिए है और अक्सर हाशिए पर खड़े समुदायों को और दबाने के लिए इस्तेमाल किया जाता है (सेडीशन कानून के तहत बड़ी मात्रा में मुसलमान और आदिवासी समुदायों के लोगों को आरोपी ठहराया जाता है)।

मेरे तर्क का निचोड़ यह है कि, जिस तथ्य की वजह से आरक्षण विरोधी समूह, आरक्षण को समानता के सिद्धांत का विरोधी मानते हैं और लिबरल जो अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को सर्वोपरि सिद्धांत मानते हैं, उसी अक्षमता से निकलता है जिसमें लिबरल सिद्धांतों को सामाजिक सच्चाइयों के अनुरूप नहीं देखा जाता। एक ऐसे सामाजिक समूह से जुड़े होने के नाते जिसने कभी भेदभाव को नहीं सहा है, उच्च जाति मानसिकता के लिए समानता एक स्वाभाविक सच है। इसीलिए वे असमान नागरिकों की समानता के लिए संघर्ष को देखने में ना केवल विफल होते हैं, वरन ये देखने में भी विफल होते हैं कि एतिहासिक रूप से दबाए गए समाज के अंश को भेदभाव से बचाने के लिए इस स्वतंत्रता को दबाने की क्या ज़रूरत है। इसीलिए कुछ रोमांचक घटनाक्रमों में जब दलित बहुजन छात्र समूहों के द्वारा अभिव्यक्ति की आज़ादी के मुद्दे को उठाया गया, तब उच्च जाति से प्रभावी समूहों द्वारा इसका समर्थन किया गया। वो बात अलग है कि समानता के लिए उठाए गए दलित बहुजनों के इस संघर्ष में वे आधे मन से ही जुड़े।

मैं जो दिखाने की कोशिश कर रहा हूं, वो यह है कि अलग-अलग छात्र समूहों के संघर्ष भले ही एक साथ आते दिख रहे हों लेकिन उनके मूल हित अब भी अलग-अलग हैं। उच्च जाति के नेतृत्व में जो छात्र समूह हैं उनका अभी भी विश्वविद्यालय के मंच को एक समावेशी मंच बनाने के संघर्ष में सक्रिय भाग लेना बाकी है। और जब तक विश्वविद्यालय अपने ढांचों में सामाजिक विभिन्नता के अनुपात में अलग-अलग वर्गों के प्रतिनिधित्व नहीं लायेंगे, तब तक वे समाज की असमानता और पूर्वाग्रहों को दोहराते रहेंगे।

क्या अपराध किया है मैंने? - फादर स्टैन स्वामी

मुझसे एनआईए ने पांच दिनों (27-30 जुलाई व 6 अगस्त) में कुल 15 घंटे पूछताछ की। मेरे समक्ष उन्होंने मेरे बायोडेटा, कुछ तथ्यात्मक जानकारी के अलावा अनेक दस्तावेज़ व जानकारी रखी जो कथित तौर पर मेरे कंप्यूटर से मिली और माओवादियों के साथ मेरे तथाकथित जुड़ाव का खुलासा करते हैं। मैंने उन्हें स्पष्ट कहा कि ये छलरचना है। ऐसे दस्तावेज़ और जानकारी चोरी से मेरे कंप्यूटर में डाले गए हैं और इन्हें मैं अस्वीकृत करता हूँ।

एनआईए की वर्तमान अनुसन्धान का भीमा-कोरेगांव मामले से कुछ लेना देना नहीं है, जिसमें मुझे 'संदिग्ध आरोपी' बोला गया है और मेरे निवास पर दो बार छापा (28 अगस्त 2018 व 12 जून 2019) मारा गया था। लेकिन अनुसन्धान का मूल उद्देश्य है निम्न बातों को स्थापित करना – 1) मैं व्यक्तिगत रूप से माओवादी संगठनों से जुड़ा हुआ हूँ एवं 2) मेरे माध्यम से बगईचा भी माओवादियों के साथ जुड़ा हुआ है। मैंने स्पष्ट रूप से इन दोनों आरोपों का खंडन किया।

छह हफ्ते चुप्पी के बाद, एनआईए ने मुझे उनके मुंबई कार्यालय में हाजिर होने बोला है। मैंने उन्हें सूचित किया है कि 1) मेरे समझ के परे है कि 15 घंटे पूछताछ करने के बाद भी मुझसे और पूछताछ करने की क्या आवश्यकता है, 2) मेरी उम्र (83 वर्ष) व देश में कोरोना महामारी को देखते मेरे लिए इतनी लम्बी यात्रा संभव नहीं है। झारखंड सरकार की कोरोना सम्बंधित अधिसूचना अनुसार 60 वर्ष से अधिक उम्र के बुज़ुर्ग व्यक्तियों को लॉकडाउन के दौरान नहीं निकलना चाहिए, एवं 3) अगर एनआईए मुझसे और पूछताछ करना चाहती है, तो वो विडियो कॉन्फ्रेंस के माध्यम से हो सकता है।

अगर एनआईए मेरे निवेदन को मानने से इन्कार करे और मुझ पर मुंबई जाने के लिए ज़ोर दें, तो मैं उन्हें कहूँगा कि उक्त कारणों से मेरे लिए जाना संभव नहीं है। आशा है कि उनमें मानवीय बोध हो। अगर नहीं, तो मुझे व हम सबको इसका नतीज़ा भुगतने के लिए तैयार रहना है।

मैं सिर्फ इतना और कहूँगा कि जो आज मेरे साथ हो रहा है, ऐसा अभी अनेकों के साथ हो रहा है। सामाजिक कार्यकर्ता, वकील, लेखक, पत्रकार, छात्र नेता, कवि, बुद्धिजीवी और अन्य अनेक जो आदिवासियों, दलितों और वंचितों के अधिकारों के लिए आवाज़ उठाते हैं और देश के वर्तमान सत्तारूढ़ी ताकतों की विचारधाराओं से असहमति व्यक्त करते हैं, उन्हें विभिन्न तरीकों से परेशान किया जा रहा है।

इतने सालों से जो संघर्ष में मेरे साथ खड़े रहे हैं, मैं उनका आभारी हूँ।

लम्बे अरसे से मैं जिन सवालों को उठाते आया हूँ, उन पर एक नोट संलग्न है - क्या अपराध किया है मैंने?

जीवन और मृत्यु एक है,
जैसे नदी और समन्दर एक है [कवि खलील जिब्रान]

पिछले तीन दशकों में मैंने आदिवासियों और उनके आत्म-सम्मान और सम्मानपूर्वक जीवन के अधिकार के संघर्ष के साथ अपने आप को जोड़ने और उनका साथ देने की कोशिश की है। एक लेखक के रूप में मैंने उनके विभिन्न मुद्दों का आंकलन करने की कोशिश की है। इस दौरान मैंने केंद्र व राज्य सरकारों की कई आदिवासी-विरोधी और जन-विरोधी नीतियों के विरुद्ध अपनी असहमति लोकतान्त्रिक रूप से जाहिर की है। मैंने सरकार और सत्तारूढ़ी व्यवस्था की ऐसी अनेक नीतियों की नैतिकता, औचित्य व कानूनी वैधता पर सवाल किया है।

1. मैंने संविधान की पांचवीं अनुसूची के गैर-कार्यान्वयन पर सवाल किया है। यह अनुसूची [अनुच्छेद 244(क), भारतीय संविधान] स्पष्ट कहती है कि राज्य में एक 'आदिवासी सलाहकार परिषद' का गठन होना है जिसमें केवल आदिवासी रहेंगे एवं समिति राज्यपाल को आदिवासियों के विकास एवं संरक्षण सम्बन्धित सलाह देगी।

2. मैंने पूछा है कि क्यों पेसा कानून को पूर्ण रूप से दरकिनार कर दिया गया है। 1996 में बने पेसा कानून ने पहली बार इस बात को माना कि देश के आदिवासी समुदायों का ग्राम सभाओं के माध्यम से स्वशासन का अपना संपन्न सामाजिक और सांस्कृतिक इतिहास है।

3.सुप्रीम कोर्ट के 1997 के समता निर्णय पर सरकार की चुप्पी पर मैंने अपनी निराशा लगातार जताई है। इस निर्णय [सिविल अपील नं: 4601-2 ऑफ 1997] का उद्देश्य था आदिवासियों को उनकी ज़मीन पर हो रहे खनन पर नियंत्रण का अधिकार देना एवं उनके आर्थिक विकास में सहयोग करना।

4. 2006 में बने वन अधिकार कानून को लागू करने में सरकार के उदासीन रवैये पर मैंने लगातार अपना दुख व्यक्त किया है। इस कानून का उदेश्य है आदिवासियों और वन-आधारित समुदायों के साथ सदियों से हो रहे अन्याय को सुधारना।

5. **मैंने पूछा है कि क्यों सरकार सुप्रीम कोर्ट के फैसले – जिसकी ज़मीन, उसका खनिज – को लागू करने में इच्छुक नहीं है** [एससी: सिविल अपील नं. 4549 ऑफ 2000] एवं लगातार, बिना ज़मीन मालिकों के हिस्से के विषय में सोचे, कोयला ब्लॉक की नीलामी कर कंपनियों को दे रही है।

6. **भूमि अधिग्रहण कानून, 2013 में झारखंड सरकार के 2017 के संशोधन के औचित्य पर मैंने सवाल किया है।** यह संशोधन आदिवासी समुदायों के लिए विनाश का हथियार है। इस संशोधन के माध्यम से सरकार ने 'सामाजिक प्रभाव आकलन' की अनिवार्यता को समाप्त कर दिया एवं कृषि व बहुफसलिया भूमि का गैर-कृषि इस्तेमाल के लिए दरवाज़ा खोल दिया।

7. **सरकार द्वारा लैंड बैंक स्थापित करने के विरुद्ध मैंने कड़े शब्दों में विरोध किया है।** लैंड बैंक आदिवासियों को समाप्त करने की एक और कोशिश है क्योंकि इसके अनुसार गांव की गैर-मज़रुआ (सामुदायिक भूमि) ज़मीन सरकार की है, न कि ग्राम सभा की| एवं सरकार अपनी इच्छा अनुसार यह ज़मीन किसी को भी (मूलतः कंपनियों) को दे सकती है।

8. **हज़ारों आदिवासी-मूलवासियों, जो भूमि अधिग्रहण और विस्थापन के अन्याय के विरुद्ध सवाल करते हैं, को 'नक्सल' होने के आरोप में गिरफ्तार करने का मैंने विरोध किया है।** मैंने हाई कोर्ट में झारखंड राज्य के विरुद्ध पीआईएल दर्ज कर मांग की है कि 1) सभी विचारधीन कैदियों को निजी बॉन्ड पर बेल में रिहा किया जाए, 2) अदालती मुकदमों में तीव्रता लायी जाए क्योंकि अधिकांश विचारधीन कैदी इस फ़र्ज़ी आरोप से बरी हो जाएंगे, 3) इस मामले में लम्बे समय से अदालती मुकदमे की प्रक्रिया को लंबित रखने के कारणों की जाँच के लिए न्यायिक आयोग का गठन हो, 4) पुलिस विचारधीन कैदियों के विषय में मांगी गयी पूरी जानकारी पीआईएल के याचिकाकर्ता को दे। इस मामले को दायर किए हुए दो साल से भी ज़्यादा का समय हो गया है लेकिन अभी तक पुलिस ने विचारधीन कैदियों के विषय में पूरी जानकारी नहीं दी है। **मैं मानता हूँ कि यही कारण है कि शासन व्यवस्था मुझे रास्ते से हटाना चाहती है। और हटाने का सबसे आसान तरीका है कि मुझे फर्ज़ी मामलों में गंभीर आरोपों में फंसा दिया जाए और साथ ही, बेकसूर आदिवासियों को न्याय मिलने की न्यायिक प्रक्रिया को रोक दिया जाए।**

रिलायंस मज़दूरों की गिरफ्तारी

एक षड़यंत्र की संरचना

बढ़ती हुई सदस्यता और निरंतर संघर्ष के कारण यूनियन कंपनी की आंख की किरकिरी बन गई थी। इसी कारण समय-समय पर प्रबंधन यूनियन के विरुद्ध पलटकर हमले करती रही। 2007 में रिलायंस इंडस्ट्रीज़ की शिकायत पर 11 मज़दूरों को इसलिए गिरफ्तार किया गया था क्योंकि उन्होंने ग्राहकों की विद्युत सप्लाई में बाधा डाली थी।

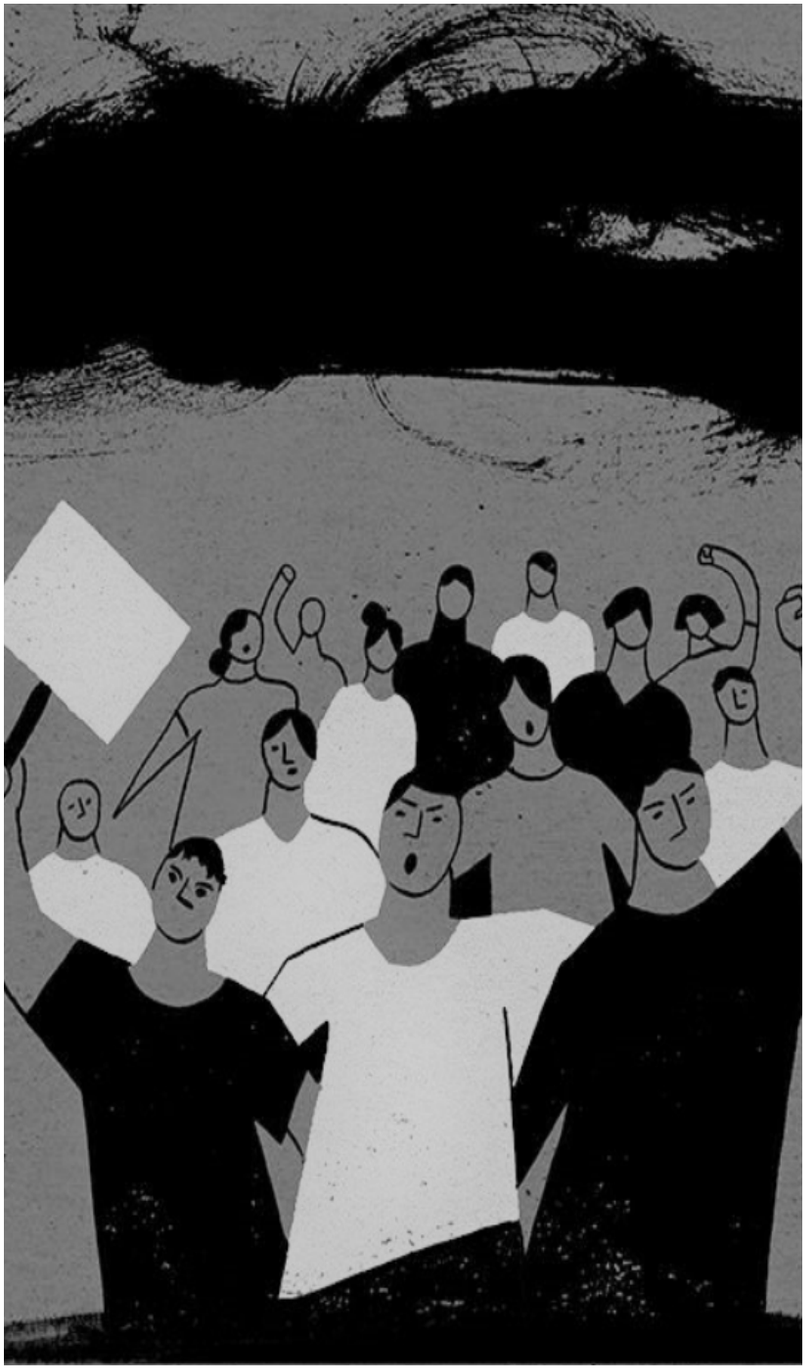

जनवरी 2018 में रिलायंस इंफ्रास्ट्रक्चर (जिसे अब अदानी इलेक्ट्रीसिटी मुंबई ने ग्रहण कर लिया है) के 5 मज़दूरों के घरों पर एटीएस द्वारा छापे मारे गए और उनको गिरफ्तार किया गया। इनमें से सत्यनारायण कर्रेला, बाबू शंकर वान्गुरी, शंकरय्या गुंडे और रवि मारेम्पल्ली, इन चारों को 12 जनवरी को गिरफ्तार किया गया और 5वें मज़दूर, सैदुलू सिंगापंगा को 5 फरवरी को हिरासत में लिया गया। गिरफ्तार कर्मचारी तेलंगाना से आए हुए हैं और इस कंपनी में 15 साल से नियमित रूप से कार्यरत हैं।

ये सब महाराष्ट्र एनर्जी एम्प्लोयी यूनियन (एमईईयू) के प्रमुख कार्यकर्ता हैं। इस यूनियन का गठन साल 2005 में उन मज़दूरों की आवाज़ का प्रतिनिधित्व करने के लिये किया गया था जिनके साथ संगठन द्वारा सस्ते ठेके के मज़दूरों की तरह व्यवहार किया जाता था। यूनियन ने (मज़दूरों के) सम्मान, श्रम अधिकार, बैंक के द्वारा वेतन का पूरा और नियमित भुगतान, सुरक्षा जूते (गमबूट), बरसाती, वर्दी, छुट्टी और बोनस के लिये संघर्ष किया। मज़दूरों को इन क्षेत्रों में सफलता मिली। लम्बे संघर्ष के बाद 2017 में ईएसआई की बीमा सुविधा मिली। 2007 से लेकर यूनियन सैकड़ों ठेका मज़दूरों को स्थायित्व प्रदान करने के लिये बान्द्रा मुंबई के श्रम न्यायालय (लेबर कोर्ट) में मुकदमा भी लड़ रही है।

बढ़ती हुई सदस्यों की संख्या और निरंतर संघर्ष के कारण यूनियन कंपनी की आंखों मे खटकने लगी। इस कारण प्रबंधन समय-समय पर यूनियन के विरुद्ध पलटवार करती रही। 2007 में रिलायंस इंडस्ट्रीज़ की इस शिकायत पर 11 मज़दूरों को गिरफ्तार किया गया कि वे ग्राहकों की विद्युत सप्लाई में बाधा डाल रहें हैं। आवश्यक सेवा अनुरक्षण कानून के अनुसार बिजली को आवश्यक सेवा माना गया है। पर बाद में मुंबई के दिन्दोशी अदालत ने यह मुकदमा इस आधार पर खारिज किया कि आरोपों को स्थापित करने के लिये कोई सबूत नहीं था। फिर भी उन 11 मज़दूरों को बिना किसी जांच के नौकरी से निकाल दिया गया। उन पर कोई अभियोग पत्र भी दायर नहीं किया गया। मज़दूरों ने ऊपरलिखित सेवानिवृत्ति को कोर्ट में चुनौती दी है और मुकदमा अभी तक चल रहा है।

एटीएस पुलिस द्वारा गिरफ्तारी से पहले रिलाइंस प्रबंधन के द्वारा ईएसआई कार्ड देने से मना करने पर एक मज़दूर की उचित इलाज के अभाव में मृत्यु हो जाने के बाद 19 दिसम्बर 2017 को तिलकनगर चेम्बूर में मज़दूरों ने आंदोलन किया था। आंदोलन के बाद प्रबंधन को विवश होकर सब मज़दूरों को ईएसआई कार्ड देने पड़े। पर इसके बाद उन्होंने 4 मज़दूरों को यह कहकर नौकरी से निलम्बित कर दिया कि उन्होंने आंदोलन का आयोजन किया था।

एटीएस ने प्रतिबन्धित भारतीय माओवादी कम्यूनिस्ट पार्टी के साथ सम्बन्ध रखने, भूमिगत पार्टी के व्यक्ति के सम्पर्क में रहने और पार्टी को चन्दा देने के आरोप लगाकर 5 मज़दूरों को कड़े यूएपीए (गैर-कानूनी गतिविधियां (रोकथाम) अधिनियम) के अधीन गिरफ्तार कर लिया। मज़दूरों ने इन आरोपों से इन्कार किया और विरोध में बताया कि ये गिरफ्तारियां खासकर अडानी द्वारा रिलायंस पर कब्जे के बाद से यूनियन की गतिविधियों को कुचलने के लिये प्रायोजित कोशिशों का ही हिस्सा हैं। एमईईयू के नेताओं की शिनाख्त करने के प्रयास में एटीएस के कर्मचारी रिलायंस (बाद में अडानी) कंपनी के मानव संसाधन विभाग में आते हुए दिखे। इन 5 मज़दूरों के अतिरिक्त पुलिस ने कई यूनियन वालों को पूछताछ के लिए बुलाया था।

वर्तमान सरकार द्वारा रची गई अर्बन नक्सल की षड़यंत्र सिद्धांत की कहानी को सही साबित करने के लिए इन मज़दूरों की गिरफ्तारी सबसे पहले आने वाली कड़ी है। मार्च 2018 की मुंबई से नाशिक की

किसान पदयात्रा को भी एक बीजेपी सांसद ने प्रेसवार्ता में अर्बन नक्सल की करतूत करार दिया था। झारखण्ड में असंगठित क्षेत्र के मज़दूरों के साथ, जिनमें से बहुत-से आदिवासी मज़दूर भी हैं, महत्वपूर्ण कार्य करने वाले मज़दूर संगठन संघ (एमएसएस) को माओवादी संस्था का मनगढ़ंत आरोप लगाकर प्रतिबन्धित कर दिया। एमएसएस के दो अधिकारियों को माओवादियों का हमदर्द बताकर गिरफ्तार कर लिया गया। जून और अगस्त 2018 के बीच सरकार ने बहुत से बुद्धिजीवियों, सामाजिक कार्यकर्ताओं और लोगों के अधिकारों के लिए लड़ने वाले वकीलों को यूएपीए के आरोप लगाकर गिरफ्तार कर लिया। यही अब बदनाम 'भीमा कोरेगांव षड़यंत्र' का मुकदमा बन गया है। जिस दृढ़ता से सामाजिक कार्यकर्ताओं और अंतरात्मा की रक्षा करने वाले लोगों ने अन्याय का पर्दाफाश किया है और आरएसएस के नेतृत्व वाली भाजपा सरकार की नीतियों व देश की जनता की स्वतंत्रता, सम्मान और आजीविका-विरोधी कार्यों की आलोचना की, उन्हें दबाने और समाज से अलग-थलग करने के लिए अर्बन नक्सल एक सुविधाजनक हथियार बन गया है।

गिरफ्तार हुए एमईईयू के कार्यकर्त्ता सामाजिक न्याय के लिए लड़ने वालों में से हैं। अपनी कंपनी के मज़दूर के अधिकारों के लिए आंदोलन करने और उन्हें संगठित करने के अतिरिक्त उन्होंने कई सालों तक मज़दूरों और जनता के संघर्ष में भी भाग लिया है। इस आशा में कि समृद्ध तेलंगाना राज्य बनने के बाद मुंबई में उनके अति दुखी प्रवासी हालत का अंत हो जाएगा। उन्होंने तेलंगना राज्य बनने के लिए आंदोलन में भी भाग लिया था। तेलंगाना के ये मज़दूर उत्पीड़ित जातियों से आते हैं और इस कारण सामाजिक न्याय के लिए किये गये सभी आंदोलनों के साथ इनका भावनात्मक सम्बन्ध है, जिनमें भीमा कोरेगांव युद्ध की पुण्यस्मरण द्विशताब्दी का अभियान भी शामिल है। कुछ मज़दूर 31 दिसम्बर 2017 को भीमा कोरेगांव में विजयस्तम्भ देखने गये थे पर 1 जनवरी को जब दंगा हुआ तो वे पुणे में नहीं थे।

निश्चय ही, इन गिरफ्तारियों ने यूनियन के दूसरे सदस्यों को हिलाकर रख दिया है। घर की आमदनी के मुख्य स्रोत के बंद हो जाने और निरंतर पुलिस की निगरानी की वजह से गिरफ्तार हुए मज़दूरों के घरवालों को बहुत मुश्किलों का सामना करना पड़ा। गिरफ्तारी के बाद जल्द ही एक मज़दूर की मां की सदमे से मृत्यु हो गयी। इतनी कठिनाइयों के बावजूद भी, जो मज़दूर गिरफ्तार हुए थे और अब ज़मानत पर हैं, यूनियन की गतिविधियों को जारी रखने और उसकी संगठनात्मक पहुंच को पुष्ट करने के लिए कटिबद्ध हैं। यह संघर्ष और दमन की ताप से कठोर बने हुए राजनैतिक मज़दूरों की प्रतिबद्धता और मज़बूती को प्रमाणित करता है और यह भी बताता है कि बड़ी पूंजी और सरकार यूनियन के मज़दूरों से क्यों डरती है।

इस पुस्तिका के छपने के समय तक बॉम्बे हाई कोर्ट द्वारा 4 मज़दूरों को ज़मानत मिल गयी थी। यह ज़मानत तो दिसम्बर 2018 में मिल गई थी पर अदालत के इस बात पर अड़ जाने पर कि वे ज़मानत के लिए सिर्फ संपत्ति के पत्र ही स्वीकार करेंगे, उनकी रिहाई कई महीनों बाद हुई। सेशन कोर्ट नें 5वें मज़दूर की ज़मानत की अर्जी नामंज़ूर कर दी है। इस निर्णय की अपील बॉम्बे हाई कोर्ट में लम्बित है।

दलित युवाओं पर वार; यह कैसे शुरू हुआ

1 जनवरी 2018 को भीमा कोरेगांव में एकत्र हुए दलितों पर हमले और उसके बाद हुए राज्यव्यापी बंद के बाद, महाराष्ट्र पुलिस ने कई दलित बस्तियों पर छापे मारकर कई आदमियों और कई युवाओं को पकड़ा। परिणामस्वरूप, हज़ारों लोग गैर-कानूनी तौर से पकड़े गये और उन्हें बिना कानूनी मदद के या नाममात्र की कानूनी मदद से लम्बे समय तक गैर-कानूनी हिरासत में रखा गया।

दलितों को उनके घरों से, सामुदायिक स्थानों से और रोज़गार के स्थानों से चुन-चुनकर निशाने पर रखना दलित बहुजन राजनैतिक गुटों द्वारा आयोजित बंद की प्रतिक्रिया में किया गया था। और दूसरी तरफ 1 जनवरी को हिंसा भड़काने वाले खास आदमी मिलिंद एकबोटे और मनोहर संभाजी भिड़े स्वतंत्र रहे। बहुमतात्मक ने बड़ी चतुराई से 1 जनवरी की हिंसा का सारा दोष दलित आंदोलनकारियों पर डाल दिया। अकस्मात ही, अतिवादी हिंदुत्व गुट निष्क्रिय पुलिस की मदद से, जिसने हिंसा की अनुमति दी थी, दोषमुक्त हो गए। यहां यह कहना प्रासंगिक होगा कि 3 जनवरी को शांतिपूर्ण बंद के लगभग खत्म होने के बाद राज्य के कुछ विशेष क्षेत्रों में हिंसा भड़क उठी। कल्याण ईस्ट में अग्री सेना ने, जो कि राजनैतिक तौर पर शिवसेना की संरक्षण में है, कथित तौर पर कई दलित निवासी क्षेत्रों और बस्तियों में आग लगा दी। निवासियों के पास इस घटना को दिखाने वाले वीडियो हैं।

बताया जाता है कि बड़ी तादाद के खिलाफ मनमाने ढंग से थोक में एफआईआर लिखवाई गई और बहुत से मामलों में तो एफआईआर की भाषा अस्पष्ट थी। कल्याण ईस्ट के एक ऐसे इलाके से, जिसने इस घटना में विशेषकर बहुत कुछ भुगता, लगभग 55 लोगों को भारतीय दंड संहिता की धारा 307 (जिसका मतलब हत्या की कोशिश है) में पकड़ा गया। और कम से कम 13 लोगों को किसी प्रकार की न्यायिक सहायता या किसी और सहायता की पहुंच से दूर न्यायिक हिरासत में रखा गया है।

भारिपा बहुजन संघ के प्रकाश अम्बेडकर के अनुसार, इस समय के दौरान लगभग 3000 गिरफ्तारियां और पकड़-धकड़ हुई। मानव अधिकार के मुद्दों पर बोलने वाली एक ऑनलाइन पत्रिका सबरंग के अनुसार, कल्याण ईस्ट विखरोली, पोवाई, कुर्ला और गोवंडी वगैरह में विशेष रूप से आक्रामक तालाशी अभियान चले। कुछ लोगों को ज़मानत मिलने के बाद दोबारा पकड़ लिया गया।

स्थानीय निवासियों और प्रभावित परिवारों से एकत्र की गई जानकारी के अनुसार कल्याण व भुसावल में लोगों को पकड़ने के लिए हत्या और षड़यंत्र जैसे भारी भरकम प्रावधानों को लगाया गया। नांदेड़, कंधार, नांदेड़गांव, भुसावल, उमारी, हिमायत नगर, तमसा, हदगांव और कल्याण आदि दूसरे इलाकों में खुली एफआईआर के द्वारा दंगे करने या किसी धर्म व वर्ग विशेष को अपमानित करने के इरादे से उनके धार्मिक स्थलों को दूषित करने जैसे प्रावधान लगाये गये। इन एफआईआर में किसी अपराधी व्यक्ति विशेष का नाम नहीं था। इससे बहुत भारी संख्या में मनमाने ढंग से गिरफ्तारी करना आसान हो गया।

समुदाय के पुरुषों की गिरफ्तारी के बाद जब स्त्रियों का एक समूह महाराष्ट्र के भुसावल डिवीज़न के बाज़ारपेठ पुलिस थाने में गया तो उन्हें सिर्फ उदासीनता और लापरवाही का सामना ही नहीं करना पड़ा अपितु अश्लील गालियों और धमकियों का भी सामना करना पड़ा। "अगर तुम यहां आई तो हम तुम्हारे चूतड़ों की चमड़ी उधेड़ देंगे," कथित तौर पर एक पुलिसवाले ने कहा। उन्होंने बताया कि यह धमकी ऐसी है, जिसे वे फोन पर बता सकती थीं। "दीदी, इसके अतिरिक्त आप सुन नहीं पाएंगी और हम बता नहीं पाएंगीं।" उचित प्रक्रिया के अभाव में क्रूर जातिप्रथा और सवर्णों के भारी दबाव को भोगती हुई दलित स्त्रियां सबसे ज़्यादा चपेट में हैं।

प्रक्रियात्मक चूक

भारतीय संविधान के मूलभूत ढांचे में पुलिस और न्यायिक हिरासत के हर अभियुक्त को निष्पक्ष सुनवाई का नियम मुहैया कराया गया है। तथापि पुलिस ने इन अधिकारों के घोर उलंघन में कार्रवाई की। जैसा कि सुप्रीम कोर्ट द्वारा कई निर्णयों में लम्बा-चौड़ा विवेचन किया गया है और इनमें सबसे उल्लेखनीय 1996 का डी के बसु बनाम स्टेट ऑफ वेस्ट बंगाल का निर्णय है। गिरफ्तार हुए पुरुषों या उनके परिवारों को ना तो उनके विरुद्ध लगाये गए मुकदमों और न ही उनके खिलाफ बनायी गई एफआईआर की नकल मुहैया करवाई गयी। बचाव पक्ष को एफआईआर की कॉपी न देने से अभियुक्त का बचाव पूरी तरह कमज़ोर पड़ जाता है और पुलिस को अनियंत्रित तौर से काम करने की छूट मिल जाती है। हिरासत में लिए गये लोगों के परिवारों ने अपने प्रियजनों पर लगाये गये आरोपों के विषय में अपने आपको पूर्णतया अंधकार में पाया और ना ही उन्हें हिरासत में लिए गये लोगों के ठिकानों का पता था। मूलभूत प्रक्रिया का अनुसरण करने में कोई जवाबदेही न होने से पुलिस को गैर-कानूनी तरीकों से पकड़े गये लोगों को एक थाने से दूसरे थाने में स्थानांतरित करने की अनुमति मिल गयी।

कुछ लोग जो भुसावल में पकड़े गये थे, उन्हें पहले बाज़ारपेठ थाने ले जाया गया और बाद में जलगांव थाने में भेज दिया। यद्यपि कई कई लोगों को ज़मानत मिल गयी थी, पर बाकी लोग चिन्ता में थे कि उन्हें नियम के अनुसार ज़मानत मिलेगी या नहीं। वर्ली और कल्याण जैसे थोड़े-बहुत मुकदमों में जहां ज़मानत दी गयी थी, तो ज़मानत की राशि 25,000 रुपए नकद के बीच तय की गई। दैनिक तौर पर आजीविका पर निर्भर परिवार, दैनिक मज़दूरी से स्वल्प आमदनी वाले मज़दूर, निर्माण कार्य में लगे मज़दूर और दूसरे छोटे-मोटे अनौपचारिक काम करने वाले मज़दूर – इनके लिए इतनी राशि को इकठ्ठा करना और जमा करना बहुत मुश्किल था।

बहुत से लोगों ने हमें बताया कि जब पकड़-धकड़ शुरू हुई तो उन्हें बताया गया था कि उनके परिवारजनों को सामान्य अपराध में पकड़ा गया है और उन्हें जल्दी ही छोड़ दिया जाएगा और यह एक औपचारिकता मात्र ही है। इसकी बजाय उन्हें लम्बे समय तक गिरफ्तार कर रखा गया। "उन्होंने हमारे परिवार के जनों को जातिद्वेष के कारण पकड़ा हुआ है।" राहुल नगर भुसावल के एक निवासी का कहना था।

इन गिरफ्तारियों के अलावा, जाति के सदस्यों को अन्य कई घटनाओं से भी बहुत आघात पहुंचा। 3 जनवरी को जब हथगांव तालुका आष्टीगांव में शांतिपूर्ण प्रदर्शन चल रहे थे, रैपिड एक्शन फोर्स ने कथित तौर पर उन प्रदर्शनकारियों पर लाठी चार्ज किया, सिर पर लाठी की चोट लगने से एक अवयस्क लड़के की मृत्यु हो गयी। भारिपा बहुजन महासंघ के प्रकाश अम्बेडकर ने ज़िलाधीश को एक पत्र लिखकर मांग की कि "इस लड़के की मृत्यु के लिए ज़िम्मेदार पुलिस अधिकारीयों को सेक्शन 302 में आरोपित किया जाए।" अभी तक ऐसी कोई एफआईआर दर्ज नहीं की गई है। कंधार, नांदेड़गांव, भुसावल, उमारी, हिमायत नगर, कल्याण और मुंबई तथा कई अन्य क्षेत्रों में ऐसी परिस्थितियां बन गई जहां से 20-25 के गुटों में लोगों को पकड़ा गया।

भीमा कोरेगांव हिंसा के बाद किये गये तलाशी अभियानों ने 1970 के दशक की बुरी तरह से याद दिला दी जिस दौरान दलित पैंथर मूवमेंट के साथ ही दलित समुदाय को इस तरह से सामूहिक रूप से निशाना बनाया गया। डॉ अम्बेडकर की प्रतिमा को अपवित्र करने पर हुए विरोध प्रदर्शनों पर रमाबाई नगर घाटकोपर में 1997 में इसे दोहराया गया जब एसपीआरएफ के सदस्यों ने विरोधकर्ताओं पर गोली चलायी जिसमें 11 लोगों की मृत्यु हो गई और 26 लोग घायल हो गये। इन सब परिस्थितियों में भीमा कोरेगांव विरोध की तरह इन सब लोगों का भी अपराध इतना ही था कि उनके पास आत्मविश्वास और आत्मरक्षा की इतनी योग्यता थी कि वे मज़बूती से प्रतिरोध करने की क्षमता रखते थे।

भीमा कोरेगांव कमीशन

1 जनवरी को हुई हिंसा की जांच करने के लिये और ऐसी घटना की पुनरावृत्ति को रोकने के लिये उपाय सुझाने के लिये फरवरी 2018 में भीमा कोरेगांव न्यायिक जांच कमीशन की स्थापना की गई। कमीशन को यह आदेश दिया गया कि वह हिंसा से पहले के घटनाक्रम की पूछताछ करे और इसके लिये ज़िम्मेदार व्यक्तियों अथवा संस्थाओं की जांच करे। अन्त में कमीशन को यह तय करना था कि उस घटना के समय उस स्थल पर पर्याप्त पुलिस बल था कि नहीं। कमीशन को अपनी रिपोर्ट देने के लिये 4 महीने का समय दिया गया था। अब तक कमीशन को 490 से ज़्यादा शपथपत्र प्राप्त हुए हैं।

इस कमीशन की अध्यक्षता के लिये कलकत्ता हाई कोर्ट के रिटायर्ड जज जिस्टिस जे एन पटेल और महाराष्ट्र के पूर्व मुख्य सचिव सुमित मल्लिक को नामांकित किया गया। हाई कोर्ट जज बनने से पहले श्री पटेल सत्र न्यायाधीश थे और 1993 में मुम्बई में क्रमबद्ध तरीके से हुए विस्फोटों के मुकदमे की प्रारम्भिक अवस्था में सुनवाई भी की थी। किन्तु मल्लिक, जो भीमा कोरेगांव हिंसा के समय महाराष्ट्र के मुख्य सचिव थे, की नियुक्ति से पूरी कमीशन प्रक्रिया ही खतरे में पड़ गई। इसके कई कारण थे।

इस घटना के तीन महीने बाद मल्लिक रिटायर हुए और आश्चर्यजनक रूप से उन्हें तत्काल ही जांच कमीशन के सदस्य के रूप में नियुक्त कर लिया गया। एडवोकेट प्रकाश अम्बेडकर ने, जिन्होंने इस जांच को बिठाने में बड़ा महत्वपूर्ण योगदान किया है, स्पष्ट रूप से कहा है कि यहां पर ऐसी स्थिति है कि इस अधिकारी की व्यक्तिगत रुचि उसके निर्णय को प्रभावित कर रही है। चूंकि कमीशन को हिंसा को रोकने में सरकार की असमर्थता की जांच करनी थी, तो तत्कालीन मुख्य सचिव होने की हैसियत से सुमित मल्लिक उस मुकदमे के गवाह भी हैं। स्थल पर उपस्थित सूत्रों का यह भी कहना है कि एडवोकेट अम्बेडकर ने मल्लिक को विशेष तौर पर फोन कर कहा था कि स्थिति को नियंत्रण में करने के लिये सक्रिय कदम उठायें। इसके उत्तर में मल्लिक का कहना है कि जब मुझे गवाह के तौर पर बुलाया जायेगा तब निष्पक्षता के हित में, मैं अपने आपको इस मामले से दूर कर लूंगा।

अभी हाल ही में भीमा कोरेगांव मामले में अभियुक्त सामाजिक कार्यकर्ता सुधीर ढवले ने सुमित मल्लिक को हटाये जाने के लिये प्रार्थनापत्र दिया है और 7 सितम्बर 2019 को इसी आधार पर कमीशन के सामने उपस्थित होने से इन्कार कर दिया है कि कमीशन का रवैया राज्य के प्रति पक्षपातपूर्ण है।

जब हम सामाजिक कार्यकर्ताओं और गवाहों के दावों पर ध्यान देते हैं तो इस प्रक्रिया की निष्पक्षता पर और सवाल उठते हैं। ऐसी रिपोर्टें जो हिंदुत्ववादियों पर इस हिंसा को भड़काने का आरोप लगाती हैं – उन्हें कमीशन के समक्ष उप्लब्ध ही नहीं कराया गया है।

परन्तु प्रत्येक प्रक्रिया अपने साथ आशा को लेकर आती है। हालांकि इसकी पक्षपाती संरचना को देखते हुए कई गवाहों और सामाजिक कार्यकर्ताओं को आशापूर्ण और न्यायसंगत परिणाम की अपेक्षा करना बेकार लगता है। अन्य लोगों ने इस पर प्रतिक्रिया देने से और कमीशन के निर्धारित 4 महीने बीतने के बहुत समय बाद तक भी अपूर्ण अंतिम रिपोर्ट की प्रतीक्षा करने से इन्कार कर दिया है।

महामारी, अदालतों और जेलों पर प्रहार करती है

किसी समाज में सभ्यता के स्तर का अंदाज़ा उसकी जेलों में जाकर के लगाया जा सकता है। – फोडोर दोस्तोवस्की

जैसाकि कोविड महामारी ने 2020 में देश और दुनिया के बाकी हिस्सों को तबाह कर दिया था, महामारी के इस दौर में भीमा कोरेगांव केस ने अपनी ही तरह की उथल-पुथल देखी। जब फरवरी 2020 के अंत में भारत में कोविड-19 मामलों की शुरुआती रिपोर्टों को जांचना शुरू किया गया था, इसी दौरान केंद्र सरकार द्वारा इस मामले की जांच को पुणे पुलिस से राष्ट्रीय जांच एजेंसी (एनआईए) को सौंप देने के एक तरफा फैसले के कारण 9 सक्रिय सामाजिक कार्यकर्ताओं को पुणे से मुंबई ले जाया गया था। पुरुष बंदियों को शुरू में आर्थर रोड जेल में रखा गया और बाद में उन्हें नवी मुंबई में तलोजा जेल में स्थानांतरित कर दिया गया था और महिलाओं को दक्षिण मुंबई में भायखला जेल में रखा गया था। कुछ महीनों के बाद तीन और कार्यकता गिरफ्तार किए गए हैं।

जेलों में सामान्य स्थिति

जेलों में कैदियों को देखभाल प्रदान करने में राज्य की उदासीनता और इसके साथ वहां क्षमता से ज़्यादा कैदियों का होना और गन्दगी, महाराष्ट्र की जेलों की विशेषता है, जो इन जेलों में महामारी के प्रसार के लिए माकूल परिस्थितियां उपलब्ध कराती है।

सुप्रीम कोर्ट ने देश भर में जेलों के अंदर की स्थितियों के बारे में स्वत: संज्ञान लेते हुए, प्रत्येक राज्य सरकार को जेलों में भीड़ कम कर, कैदियों में शारीरिक दूरी की स्थिति बनाये रखने के लिए और महामारी के प्रसार को नियंत्रित करने के लिए एक उच्चाधिकार समिति (एचपीसी) गठित करने का आदेश दिया। जबकि महाराष्ट्र में गठित एचपीसी ने कुछ श्रेणियों के विचाराधीन अपराधियों और दोषियों की अंतरिम रिहाई के आदेश पारित किए लेकिन यह आदेश भी जेल की आबादी को वांछित स्तर तक लाने में असमर्थ रहा है।

28 जुलाई 2020 तक तलोजा जेल में 2201 कैदियों को रखा गया। यह संख्या सामान्य समय के दौरान की अपनी अधिकतम क्षमता से भी ज़्यादा है, तलोजा जेल अधिकारियों ने अदालत के एक सवाल के जवाब में स्वीकार किया है कि अगर उन्हें महामारी के प्रसार से निपटने के लिए सामाजिक दूरी के मानदंडों को पूरा करना ज़रूरी है तो वे सिर्फ अधिकतम 1416 कैदियों को रख सकते हैं, भायखला जेल में वर्तमान में 257 कैदी हैं, लेकिन सामाजिक दूरी के मानदंडों को बनाए रखने के लिए वे सिर्फ 175 कैदियों को रख सकते हैं।

तलोजा जेल में बंद एक कार्यकर्ता, महेश राउत ने अपनी बहन के साथ दो मिनट की बातचीत में बताया कि लगभग 1000 कैदी फ्लू, खांसी या सर्दी की शिकायत कर रहे हैं। उनकी बहन के अनुसार, "महेश को खुद दो दिनों से बुखार था और वह पेचिश से भी पीड़ित थे।"

तलोजा जेल के अंदर दो कैदियों की मौत हो गई है और बाद में वे कोविड-19 की जांच रिपोर्ट में पॉजिटिव पाये गये। हालांकि क्षमता से ज़्यादा कैदियों वाली तलोजा जेल अभी भी नए कैदियों को लेती जा रही है। भायखला जेल के डॉक्टर और जेल अधीक्षक की कोविड-19 जांच रिपोर्ट पॉजिटिव पाई गई और एक कैदी, जिसे खून में ऑक्सीजन के स्तर में गिरावट की शिकायत के कारण अस्पताल में भर्ती होना पड़ा, की जांच रिपोर्ट

भी पॉजिटिव आई। इन जेलों में सक्रिय मामलों की उपस्थिति के बावजूद, सभी कैदियों के परीक्षण के अनुरोध को अभी भी इन्कार किया जा रहा है।

वरवरा राव और अन्य के स्वास्थ्य संकट

80 वर्षीय क्रांतिकारी कवि वरवरा राव, नवम्बर 2018 से बंदी बनाये गए हैं, जिनका स्वास्थ्य पहले से ही खराब था, मुंबई की जेल के अंदर उनके स्वास्थ्य में तेज़ी से गिरावट आने लगी। मई माह में, पहले उन्हें जेल अस्पताल में भर्ती कराया गया था, और तबीयत बिगड़ने पर 27 मई को उन्हें जांच और उपचार के लिए जेजे अस्पताल में स्थानांतरित कर दिया गया था। राव की मेडिकल ज़मानत अर्जी लंबित थी जब वे अस्पताल में भर्ती हुए थे, इस वजह से जल्दबाजी में उन्हें जेजे अस्पताल से छुट्टी दे दी गई और पूरी तरह ठीक होने से पहले ही उन्हें वापस जेल भेज दिया गया। कोर्ट में जेजे अस्पताल ने एक रिपोर्ट दायर की, जिसमें कहा गया था कि उनकी हालत स्थिर है, लेकिन जेल के अन्य कैदियों की रिपोर्टों ने इस राय की पुष्टि नहीं की। कई स्थगन के बाद एनआईए कोर्ट ने 26 जून को उनकी ज़मानत अर्जी को खारिज कर दिया।

उनके परिवार के साथ फोन पर बातचीत से उनकी सबसे खराब आशंकाओं की पुष्टि हुई, परिवार ने बताया कि वे अपने परिवार के लोगों को पहचान नहीं सके, वे बेसुध थे और अपने प्रतिदिन के कार्य-कलापों जैसेकि खुद की देखभाल करना, अपने दांत ब्रश करना जैसी बुनियादी क्रियाओं के लिए दूसरों की सहायता पर निर्भर थे। कुछ दिनों बाद सरकारी अस्पताल ने अंततः खुलासा किया कि उनकी कोरोना वायरस परीक्षण जांच पॉजिटिव आई थी। उन्हें तलोजा जेल से जेजे अस्पताल और फिर वहां से सेंट जॉर्ज अस्पताल में बंद कर दिया गया और आखिरकार उनके परिवार और राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग के लगातार हस्तक्षेप के बाद उन्हें नानावती अस्पताल में स्थानांतरित किया गया। हाई कोर्ट में एक और आवेदन दिया गया कि परिवार को अस्पताल से उसकी स्थिति के बारे में जानकारी प्राप्त करने और उनसे वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग के माध्यम से बात करने की अनुमति दी जाए।

वरवरा राव के संपर्क में आने वाले सह-आरोपियों – महेश राउत, वर्नन गोंज़ाल्विस और आनंद तेलतुंबड़े – का कोविड टेस्ट कराने के लिए हाई कोर्ट में याचिकाएं दायर की गईं। इन अनुरोधों का अनुपालन करते हुए, हाई कोर्ट में प्रस्तुत किए गए लैब परीक्षण के परिणामों में से दो में न सिर्फ समान पल्स दर, रक्तचाप और ऑक्सीजन सांद्रता है, बल्कि एक ही ऊंचाई और वज़न भी है। इससे ये उजागर होता है कि जेल में कैद आबादियों के इन परीक्षणों में घोर लापरवाही बरती जा रही है।

इस बीच सुधा भारद्वाज की जेल की मेडिकल रिपोर्ट से पता चला कि उन्हें इस्केमिक हृदय रोग हुआ है, जो एक गंभीर स्थिति है जिसमें हृदय की मांसपेशियों में रक्त का प्रवाह कम हो जाता है, जिस कारण कार्डियक अरेस्ट हो सकता है। यह बीमारी उनकी रोग प्रतिरोधक क्षमता को कम करती है व उनके कोविड-19 से संक्रमित होने में सहायक हो सकती है, क्योंकि वे एक मधुमेह रोगी भी हैं और पहले उन्हें पल्मोनरी टीबी भी हो चुकी है। वरवरा राव की तरह एनआईए कोर्ट ने सुधा भारद्वाज की भी ज़मानत याचिका खारिज कर दी थी।

महामारी के दौरान एनआईए और कोर्ट

हमेशा सुस्त रहने वाली कोर्टें, महामारी के दौरान भी ठहराव की स्थिति में थीं, लेकिन इस दौरान एनआईए का इस केस को लेकर अति उत्साह एक अजीब विरोधाभासी परिस्थिति निर्मित कर रहा है।

एनआईए ने तीन और कार्यकर्ताओं को गिरफ्तार करने, उनसे हिरासत में पूछताछ करने, विभिन्न स्थानों पर छापे मारने, अन्य लोगों से पूछताछ करने और विभिन्न शहरों में

टीम भेजने के लिए कोविड-19 के कारण किये लॉकडाउन की अवधि का इस्तेमाल किया।

17 मार्च को, यानी जब देश महामारी का सामना करने की तैयारी कर रहा था, सुप्रीम कोर्ट ने प्रो आनंद तेलतुंबड़े और गौतम नवलखा को गिरफ्तार कर उनकी कैद पर रोक लगाने से इन्कार कर दिया। 14 अप्रैल को तेलतुंबड़े और नवलखा दोनों ने हिरासत में पूछताछ के लिए क्रमशः मुंबई और दिल्ली में एनआईए का रुख किया और उन्हें तुरंत गिरफ्तार कर लिया गया। 28 जुलाई को गहन पूछताछ के बाद एनआईए ने दिल्ली विश्वविद्यालय के प्रोफेसर हेनी बाबू को भी गिरफ्तार कर लिया, जिसे पूर्व में एनआईए ने अपने मुंबई कार्यालय में बुलाया था।

प्रो तेलतुंबड़े की ज़मानत याचिका का विरोध करने के एक दिन बाद, मुंबई के एनआईए कार्यालय ने खुलासा किया कि उनके सहायक कर्मी कोविड-19 से संक्रमित थे। इसके बावजूद एनआईए कोर्ट ने चिकित्सा आधार पर प्रो तेलतुंबड़े को ज़मानत देने से इन्कार कर दिया।

एनआईए की सक्रियता तब भी प्रदर्शित हुई जब दिल्ली हाई कोर्ट में 26 मई को गौतम नवलखा के लिए निर्धारित ज़मानत की सुनवाई से एक दिन पहले एनआईए ने उनके परिवार या उनके वकीलों और दिल्ली रिमांड कोर्ट को, जिसके अधीन वे हिरासत में थे, को सूचित किए बिना, रातोंरात उन्हें मुंबई शिफ्ट कर दिया।

दूसरी ओर मुंबई में ट्रायल कोर्ट बहुत धीमी गति से चल रहे थे सिर्फ अत्यावश्यक आवेदनों को सुना जा रहा था और बाकी कैदियों की कोई सुनवाई नहीं थी। 15 मार्च से परिवार के सदस्यों और कैदियों के वकीलों को जेल में मिलने पर रोक लगा दी गई थी। भीमा कोरेगांव मामले में, एक कोर्ट के आदेश ने बिन्दयों के साथ टेलीफोनिक बातचीत की अनुमति दी थी, लेकिन भायखला महिला जेल ने महीनों तक इस आदेश का पालन नहीं किया। जेलों में मिलने से रोकने के लगभग तीन महीने बाद 9 जून को सुधा भारद्वाज ने अपनी बेटी से बमुश्किल दो मिनट की बात की। बॉम्बे हाई कोर्ट के समक्ष एक जनहित याचिका दायर की गई जिससे अंततः भीमा कोरेगांव मामले के कैदियों समेत अन्य सभी कैदियों को टेलीफोन पर अपने कानूनी सलाहकारों से परामर्श करने की अनुमति दी गई।

सभी ट्रायल कोर्ट की कार्यवाही में काफी देरी हुई क्योंकि जेल अधिकारियों ने दावा किया कि लॉकडाउन के कारण उन्हें कोर्ट के आदेश नहीं मिल पा रहे हैं। एक नई मिसाल कायम करते हुए, ट्रायल कोर्ट ने भीमा कोरेगांव मामले में बचाव पक्ष के वकीलों को निर्देश दिया कि वे जेल अधिकारियों को कोर्ट के आदेश की एक प्रति सुपुर्द करें ताकि जेल रिपोर्ट के दस्तावेज़ की लिखाई को सुनिश्चित किया जा सके। जबकि आधिकारिक आदेश द्वारा प्रमाणित प्रतिलिपि अनुभाग को बंद कर दिया गया था, यहां तक कि अदालती आदेशों की ऑनलाइन प्रतियां भी हफ्तों तक अपलोड नहीं की गई थीं, जिससे तत्काल आवेदन दाखिल करने में देरी हुई। सीमित संख्या में सुनवाई के साथ महामारी मोड में काम करते हुए, हाई कोर्ट ने अभी तक वरवरा राव की महीने भर पुरानी 'तत्काल' चिकित्सा ज़मानत याचिका पर कोई फैसला नहीं किया है, जिनकी स्वास्थ्य स्थिति गंभीर है, वर्तमान में वे कोरोनो वायरस से संक्रमित हैं और साथ ही कई अन्य बीमारियों से भी पीड़ित हैं, और न ही सुधा भारद्वाज की ज़मानत याचिका पर कोई निर्णय लिया गया।

यह कहा जाता है कि इस महामारी ने समाज में मौजूद असमानताओं को और व्यापक बनाने और उन्हें और अधिक उजागर करने का काम किया है। हमारा आपराधिक न्यायशास्त्र हमेशा त्रुटिपूर्ण रहा है, जो अब प्रक्रियात्मक कानून और न्याय के बीच, शासन और उत्पीड़न के बीच, जांच और सच्चाई के बीच बड़ा अन्तर होने की वजह से भयानक रूप से विकृत हो गया है।

यूएपीए कानून (गैर-कानूनी गतिविधियां (रोकथाम) अधिनियम) और भीमा कोरेगांव केस

यूएपीए किसी नए या अनूठे तरीके के 'आतंकवाद' का जवाब नहीं बल्कि साम्राज्यवादी प्रवृत्ति से उपजा हुआ एक और तरीका है लोकतंत्र और अधिकारों की कदर करने की बजाय असहमति को दबाने का और फासीवादी दमनकारी राजनैतिक कानूनी ढांचों से राज करने का। 'गैर-कानूनी गतिविधि' की धारणा सबसे पहले ब्रिटिश द्वारा 1908 में 'आपराधिक संशोधन कानून' के तहत लायी गयी और बाद में कुख्यात 'रोलेट ऐक्ट' में भी अपनायी गयी।

आज़ाद हिंदुस्तान में ब्रिटिश समय के कानूनों की विरासत को आगे ले जाने का काम 'यूएपीए', 'टाडा, 'पोटा' आदि ने किया। हालांकि इन सब में यूएपीए 2004 तक एक निष्क्रिय कानून के रूप में ही बना रहा।

चौतरफा आलोचना के चलते पोटा को 2004 में निरस्त कर दिया गया, लेकिन इसके कई प्रावधानों को 2004, 2008, 2012 और 2019 के संशोधनों के ज़रिए यूएपीए में जोड़ दिया गया।

यूएपीए और अन्य आलोकतांत्रिक कानूनों के मुख्य बिंदु हैं:

1. इन कानूनों में अधिकतर अपराध की एक व्यापक सीमा दर्शायी जाती है और इन्हें काफी अस्पष्ट तरीके से परिभाषित किया जाता है।

2. इनमें प्रशासन को तलाशी, ज़ब्ती या नज़रबंदी जैसे कामों में काफी छूट दी गयी है जिससे मौजूदा फौजदारी कानून और संविधान में दिए गए सुरक्षा के प्रावधानों को नज़रअंदाज़ किया जाता है।

यूएपीए की अस्पष्टता और व्यापकता के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं:

- इस कानून की शब्दावली एक खास किस्म की है। 'भारत की एकता', 'अखंडता', 'सुरक्षा', 'संप्रभुता' को खतरा पहुंचाने के तरीके ही नहीं, इसकी 'सम्भावना' या इसका 'इरादा' भी गैर-कानूनी गतिविधियों में गिना गया है।

- 'आतंकवादी गतिविधि' की अस्पष्ट परिभाषा होने के कारण कई अन्य गतिविधियों को इसके दायरे में शामिल करके इस कानून के तहत छानबीन चलायी जा सकती है। कई गतिविधियों को 'षड़यंत्र रचना', 'फंड उगाई', 'आतंकवादी संगठन की सदस्यता होना' जैसे प्रावधानों के अंतर्गत गिनाया जा सकता है।

- अपराधों को काफी अस्पष्ट तरीके से परिभाषित किया गया है, जैसेकि कामों को 'समर्थन देना', 'परामर्श देना', 'प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से पैसा लगाना या इकठ्ठा करना', 'एक आतंकी गतिविधि को प्रारम्भ या उसकी योजना तैयार करना' आदि।

- 'गैर-कानूनी गतिविधि' के दायरे को भी व्यापक और अस्पष्ट रूप से परिभाषित किया गया है। उसमें कोई भी मौखिक/लिखित/कलात्मक गतिविधि आ सकती है, जो हिंदुस्तान की संप्रभुता या अखंडता को खंडित करे/प्रश्न करे/बाधित करे या जिसकी मंशा हिंदुस्तान में या इसके खिलाफ असंतोष पैदा करने की है।

यूएपीए के शब्दों की अस्पष्टता, जांचकर्ता एजेंसी और उनके राजनैतिक मालिकों को पूरी छूट देती है ये फैसला करने का कि कौन-सी अहिंसात्मक राजनैतिक गतिविधि को 'आतंकी गतिविधि' बताया जा सके जिससे अभियुक्तों को यूएपीए के प्रावधानों में उलझाए रखा जा सके। साथ ही 'दंगे करना' जैसी हिंसात्मक गतिविधियों में आईपीसी की धाराओं के तहत कार्यवाही की जा सके ताकि जो इन कार्यों में अभियुक्त हों उन्हें तरह-तरह की छूट और सुरक्षाएं मिलती रहें। उदाहरण के तौर पर, भीमा कोरेगांव से जुड़ी कई रिपोर्टों ने संभाजी भिड़े और मिलिंद एकबोटे को हिंसा कराने और भड़काऊ भाषा का उपयोग करने का दोषी पाया है। फिर भी इनके खिलाफ यूएपीए नहीं लगाया गया। इसके उलट, भीमा कोरेगांव के जश्न के दौरान एक भाषण में विख्यात कवि बर्तोल ब्रेख्त की एक कविता का मराठी अनुवाद ही काफी था मानवाधिकार के लिए लड़ने वालों पर यूएपीए लगाने के लिए।

यूएपीए से पुलिस के पास यह ताकत मिली हुई है जिससे कई सवालों को अवैध बताया जा सके, कुछ खास किस्म के संघर्षों को आपराधिक घोषित किया जा सके या सत्ता से सवाल पूछने वाले नागरिकों को निशाना बनाया जा सके। कौन-से संगठन प्रतिबन्धित होंगे, कौन-से कार्यों पर यूएपीए लगेगा और किन पर आम फौजदारी धाराएं, देश की सुरक्षा, संप्रभुता, अखंडता, सुरक्षा जैसे व्यापक मुद्दों को किस तरीके से देखा जायेगा – इन सब से यह साफ झलकता है कि यूएपीए जातिवाद और साम्प्रदायिक सोच से पूरी तरह लिप्त है। इसका केवल एक ही मकसद है - सत्ता में बैठे राजनैतिक दलों द्वारा चुनिंदा मानवाधिकार कार्यकर्ताओं को चुप कराना और जनांदोलनों का सफाया करना।

कोई भी सिर्फ इसलिए गुनाहगार नहीं ठहराया जा सकता क्योंकि राजसत्ता ने उन पर किसी जुर्म का आरोप लगाया है। संविधान में कई सारी प्रतिबद्धताएं हैं जो किसी भी अभियुक्त के प्राण और दैहिक स्वतंत्रता को सुरक्षित और सुनिश्चित करती हैं। यह अधिकार दंड प्रक्रिया संहिता (सीआरपीसी) में भी दिए गए हैं। लेकिन यूएपीए सुरक्षाओं के परे एक ऐसा अपवाद है जो ढांचागत तरीके से अभियुक्त के तमाम संवैधानिक अधिकारों को नकारता है। यह करने के कुछ तरीके नीचे गिनाये गए हैं:

1. आईपीसी और अन्य कानूनों के अंतर्गत अभियुक्त को पुलिस हिरासत में 15 दिन तक भेजा जा सकता है। पर यूएपीए के तहत पुलिस हिरासत को 30 दिन तक बढ़ाया जा सकता है। हमारे देश में पुलिस हिरासत यानी टॉर्चर की संभावना। इस दौरान पुलिस अक्सर अपने मनमुताबिक बयान लिखवाने के लिए अभियुक्त के साथ हिंसात्मक और क्रूर तरीकों से पेश आती है।

2. यूएपीए में अभियुक्त कोई भी व्यक्ति अग्रिम ज़मानत (गिरफ्तारी से पहले ज़मानत) नहीं ले सकता। अन्य कानूनों में यह छूट दी जाती है। आईपीसी की धारा वाले मामलों में पुलिस के पास 90 दिन होते हैं चार्जशीट दायर करने के लिए। चार्जशीट में मामले और कार्यवाही का विवरण, अभियुक्त के खिलाफ लगाये गए आरोप और उन्हें प्रमाणित करने के लिए सबूत गिनाये जाते हैं। अगर पुलिस 90 दिन के अन्दर चार्जशीट तैयार न कर सके तो अभियुक्त को इसी कारण बेल मिल जाना चाहिए। लेकिन यूएपीए में जांच एजेंसी को 180 दिन मिलते हैं चार्जशीट दाखिल करने के लिए। इसका मतलब यह हुआ कि इस कानून में पुलिस आपको कोई भी ठोस आरोप या सबूत के या उस गिरफ्तारी को न्यायसंगत ठहराने की ज़रूरत महसूस किये बिना 6 महीने तक गिरफ्त में रख सकती है।

3. यूएपीए में ज़मानत मिलने की संभावना भी घट जाती है अगर कोर्ट को लगे कि केस डायरी या चार्जशीट में ऐसा कुछ दिया गया

है जिसे पहली नज़र देखके लगता है कि अभियुक्त के खिलाफ लगाये गए आरोप सच होने की संभावना है। हालांकि चार्जशीट अथवा केस डायरी केवल पुलिस के पक्ष से लिखा गया विवरण होता है जो बाद में चलके शायद न्यायिक जांच में खरा न उतरे। लेकिन इस सन्दर्भ में बेगुनाह लोगों को तब तक जेल में बंद रखने के लिए पुलिस और प्रशासन के पक्ष का बयान काफी होता है, जब तक कि अदालती मुकदमा पूरा न हो जाए।

अमूमन, फौजदारी कानून के अंतर्गत ज़मानत का अधिकार दिया जाता है जब तक यह सुनिश्चित किया जा सके कि अभियुक्त मुकदमे के दौरान कोर्ट में पेश होंगे और कार्यवाही को प्रभावित करने की कोशिश नहीं करेंगे। यूएपीए के प्रावधान ही कुछ ऐसे हैं कि उससे अभियुक्त की ज़मानत के अधिकार को खत्म किया जाए। यूएपीए के 67 फीसदी मामलों में अभियुक्त निर्दोष साबित होता है। इस कानून का मकसद है आरोपी को मुकदमा होने से पहले ही दण्डित करना, चाहे वह दोषी हो या नहीं।

प्रक्रियागत संरक्षण को कानूनी रूप से तो यूएपीए में कमज़ोर किया ही गया है पर अक्सर तमाम जज भी इसमें दी गईं अभियुक्त की सीमित सुरक्षाओं को अनदेखा कर देते हैं। ऐसे मौकों पर वे अक्सर अभियोगकर्ता यानी प्रोसेक्यूशन का पक्ष लेते हैं। उदाहरण के लिए, यूएपीए का दुरुपयोग रोकने के लिए दी गयी मंज़ूरी प्रक्रिया का प्रावधान। सही प्राधिकारी से ठीक ढंग की मंज़ूरी लिए बिना कोर्ट में यूएपीए के मामले दाखिल नहीं हो सकते। पर ऐसे मामलों में अक्सर वकीलों ने यह अनुभव किया है कि मंज़ूरी की इस प्रक्रिया को सिर्फ फाइल को आगे बढ़ाने की तरह देखा जाता है। कई सारे निचले कोर्ट व कभी-कभी हाई कोर्ट भी इस प्रक्रिया में काफी ढिलाई बरतते हैं।

गैर-कानूनी गतिविधियां (रोकथाम) संशोधन अधिनियम (यूएपीए), 2019 राजसत्ता को सम्पूर्ण ताकत देता है कि बिना कोई प्रक्रिया से गुज़रे भी किसी भी व्यक्ति को 'आतंकवादी' करार दिया जा सके ताकि उसके पास खुद के बचाव का कोई तरीका नहीं रहे।

हम लड़ेंगे साथी - पाश

हम लड़ेंगे साथी, उदास मौसम के लिए
हम लड़ेंगे साथी, गुलाम इच्छाओं के लिए
हम चुनेंगे साथी, ज़िन्दगी के टुकड़े
हथौड़ा अब भी चलता है, उदास निहाई पर
हल अब भी चलता हैं चीखती धरती पर
यह काम हमारा नहीं बनता है, सवाल नाचता है
सवाल के कन्धों पर चढ़कर
हम लड़ेंगे साथी
कत्ल हुए जज़्बों की कसम खाकर
बुझी हुई नज़रों की कसम खाकर
हाथों पर पड़े गाँठों की कसम खाकर
हम लड़ेंगे साथी

हम लड़ेंगे
कि लड़े बगैर कुछ नहीं मिलता
हम लड़ेंगे
कि अब तक लड़े क्यों नहीं
हम लड़ेंगे
अपनी सज़ा कबूलने के लिए
लड़ते हुए मर जाने वाले की
याद ज़िन्दा रखने के लिए
हम लड़ेंगे

आओ हाथ बढ़ाओ!

जनता से अपील

हर शासन का देश चलाने का अपना ही अनोखा तरीका होता है। एनडीए सरकार के दो काल में हमने विद्रोह की हर आवाज़ को दबाने की रणनीति साफ देखी है।

संविधान में गढ़ित मूल्यों के लिए प्रयास करने को ही, चाहे वो लिखकर हो, वकालत के ज़रिए हो, प्रदर्शन करके हो, या विद्रोह से हो, सभी को तोड़-मोड़कर कुचला गया है। इसकी तुलना शासन व्यवस्था द्वारा एक जाल बिछाए जाने से की जा सकती है, एक ऐसा जाल जो एक्टिविस्ट समूह के लिए सफलतापूर्वक बहुत खूबी से फैलाया गया है। प्रत्येक कृत्य, खास तौर से जब वो एक ताकत बन जाता है जिसे नज़रअंदाज़ नहीं किया जा सकता है, पर ऐसे वार किया जाता है कि मानो वो जो भेदभाव के खिलाफ खड़े हैं, वो जो न्याय के लिए आगे आये हैं, वो ही अपराधी की श्रेणी में दिखने लगते हैं।

हम एक अनकहे आपातकाल के दशक में रह रहे हैं, जहां हर आवाज़ को दबोचा जाता है। मीडिया को चुप नहीं कराया गया है, वरन उसका राज्य के प्रचार-प्रसार में बहुत असरदायक तरीके से उपयोग किया जाता है और एक भ्रमित करने वाली छवि चित्रित की गयी है।

इन सामाजिक कार्यकर्ताओं को हिरासत में लेने का उद्देश्य सिर्फ अधिकार की लड़ाई लड़ने वाले कार्यकर्ताओं के जोश को ठंडा करना ही नहीं था बल्कि शासन के विरुद्ध आवाज़ उठाने वाले प्रत्येक व्यक्ति को दबाना था। 2018 में शुरू होते हुए, यह सिर्फ चुनाव से पहले विरोध के स्वर को दबाना ही नहीं बल्कि प्रजातंत्र की आत्मा के ताने-बाने को तार-तार करना था।

चुनाव के बाद सत्ता में आने के तुरन्त बाद सरकार ने प्रजातांत्रिक अधिकार के लिये लड़ने वाले कार्यकर्ताओं के विरुद्ध अपने

कार्यक्रम को बहुत ज़ोर-शोर से पुनर्जीवित किया और इसकी रक्षा करने वाले हर संस्थान पर आक्रमण किया। सरकार ने यूएपीए (गैर-कानूनी गतिविधियां (रोकथाम) अधिनियम) को संशोधित कर उसमें 'आतंकवादी व्यक्ति' की धारा जोड़ दी जिसके अनुसार किसी भी व्यक्ति को मनमाने तरीके से आतंकवादी करार दे दिया जा सकता है और दरअसल जिस व्यक्ति को ऐसा नाम दे दिया जायेगा, उसके लिए यह एक नागरिक मृत्युनुमा है। भीमा कोरेगांव के मसले में पूछताछ और गिरफ्तारियों के दौर, और एक्टिविस्ट समुदाय के खिलाफ यूएपीए का व्यापक उपयोग, एक बार फिर से नए सत्ता शासन में इस समुदाय की नाज़ुक स्थिति को रेखांकित करता है। यह एक ताकीद थी कि एक बार यूएपीए का अभियोग लगाने पर एक विचाराधीन अभियुक्त को बिना ज़मानत के कई साल गुज़ारने पड़ते हैं। यूएपीए के अंतर्गत सज़ा की दर बहुत ही कम है, और ज़्यादातर मसले दोषमुक्त होकर बरी होने में खत्म होते हैं। मुकदमे के पूर्व लम्बी कैद, ज़मानत की अनुपलब्धि, लम्बे-चौड़े मुक़दमे जो कभी खत्म नहीं होते और अभियोजन के हर एक झूठ के साथ मीडिया की गालियां ही यूएपीए के आरोप की वास्तविक सज़ा बन जाती है। मुस्लिमों, दलितों, आदिवासियों और विभिन्न सत्तारूढ़ सरकारों के खिलाफ विरोधी आवाज़ों को दबाने के लिये बार-बार यूएपीए का अन्धाधुन्ध इस्तेमाल किया गया।

एक तरफ किसी भी तरह की असहमति को दबाने के लिए इसका एक हथियारनुमा उपयोग बढ़ता गया है, दूसरी तरफ, जैसे ही सरकार सत्ता हासिल करती है, वो कानूनों में बड़े बदलाव लाकर लोगों के लोकतांत्रिक अधिकारों की अवहेलना करती जा रही है। सूचना का अधिकार कानून, जिसके द्वारा सरकार से जवाबदेही लेने की आम नागरिकों को अनुमति है, उसमें भी संशोधन करके उसे कमज़ोर किया गया है। अब केन्द्रीय सरकार अपने सूचना आयुक्तों की आय और अवधि नियंत्रित कर सकती है जिससे राज्य और केन्द्र दोनों स्तरों पर सूचना आयुक्तों की स्वतंत्रता पर असर पड़ता है।

दस लाख की सेनाबल की ताकत से विद्रोह की आवाज़ों को दबाने के लिए, 5 अगस्त 2019 को केन्द्र सरकार ने कश्मीर को भारत से संवैधानिक रूप से जोड़ने वाले अनुच्छेद 370 को चुपके-चुपके खत्म कर राज्य को दो केन्द्र शासित प्रदेशों में बांट दिया। तब से, बिना किसी चयनित सरकार के, जम्मू और कश्मीर के लोगों के अधिकारों को दबाने के लिए कानूनों में लगातार बदलाव किया जा रहा है। कम से कम, 56 कानूनों को राज्यपाल के निर्देश से पारित किया गया है।

2019 के आखिर में, संसद में नागरिकता संशोधन कानून पारित कर दिया गया जिसके अनुसार पहली बार इस देश में नागरिक बनने के लिये धर्म को ज़रूरी आधार माना गया है। पड़ोसी देशों में धर्म के आधार पर प्रताड़ित अल्पसंख्यकों को संरक्षण देने के बहाने इस देश के मुस्लिम अल्पसंख्यकों को निशाना बनाया जायेगा। इस संशोधन से संविधान का मूलभूत ताना-बाना ही बदल जाता है जिसके अनुसार भारत एक धर्मनिरपेक्ष देश है और इसकी नागरिकता किसी धर्म के आधार पर निश्चित नहीं की जा सकती। इसके विरोध में देश भर में आन्दोलन हो रहे हैं। इसके बाद दिल्ली और उत्तर प्रदेश के कई इलाकों में पुलिस की गुंडागर्दी का दौर चला है। इस सब में मुस्लिम औरतें बड़ी संख्याओं में बाहर आयी हैं, और दिन-ब-दिन, देश के विभिन्न शाहीन बागों ने हमे भी उत्तेजित करके सड़क पर बाहर आने के लिए मजबूर किया। दिल्ली में शाहीन बाग का विरोध प्रदर्शन 101 दिनों तक कायम रहा, जब तक कि कोरोना महामारी के कारण 24 मार्च 2020 को ज़बरन बंद करने के लिए मजबूर नहीं किया गया।

दिल्ली के राज्य चुनाव में भाजपा की हार के सिर्फ दस दिन बाद, उत्तर-पूर्व दिल्ली में फरवरी 2020 से चल रहे शांतिपूर्वक विरोध प्रदर्शन को दंगों का रूप दे दिया गया। दिल्ली

विशेष पुलिस द्वारा अब षड़यंत्र के रूप में प्रस्तुत किये जा रहे इन दंगों में 53 लोगों की जानें गयीं। भीमा कोरेगांव षड़यंत्र मसलेनुमा, दिल्ली पुलिस इन दंगों को भी षड़यंत्रनुमा प्रस्तुत करके, उन सभी जो एनआरसी-सीएए के खिलाफ बोल रहे थे, शिक्षाविदों, विद्यार्थी नेताओं, वार्ड पार्षदों और अन्य लोगों को टारगेट करते हुए, अभी तक 20 से ज़्यादा लोगों को यूएपीए के अंतर्गत गिरफ्तार किया गया है।

इस प्रजातांत्रिक देश के अन्य स्तम्भों, जैसे न्यायप्रणाली, मानव अधिकार आयोग, को या तो कमज़ोर कर दिया है या उसकी रीढ़ की हड्डी तोड़ दी है। 9 नवम्बर 2019 को सुप्रीम कोर्ट ने निर्णय दिया जिसमें उन्होंने बाबरी मस्जिद गिराने वाली भीड़ की उस मांग को सही ठहराया जिसके बाद खूनखराबा हुआ था। इस निर्णय से भारत की न्यायप्रणाली की स्वतंत्रता के बारे में बहुत कुछ समझा जा सकता है। जैसे कि यह काफी नहीं था दिखाने के लिए कि कितनी मज़बूती से सरकार न्यायव्यवस्था को असर कर रही है, प्रधान मंत्री और कई राज्यों के मुख्य मंत्रियों ने 5 अगस्त 2020 को अयोध्या मंदिर की नींव आयोजन में भाग लिया, एक ऐसे वक्त जब हम सब लॉकडाउन के चरम पर जी रहे थे और एक ऐसे दिन पर जब कश्मीरी नागरिक के मानस को ठीक एक साल पहले धुतकारा गया था। इसी के दो महीनों के अन्दर, और 1992 के विध्वंस के 28 साल बाद, विशेष न्यायालय ने बाबरी विध्वंस के मसले में सभी 31 आरोपियों को बरी कर दिया।

इस पूरे समय के दौरान मानवाधिकार की रक्षा के लिये लड़ने वालों की धर-पकड़ भी बिना रुके जारी रही। अखिल गोगई, एक मानव अधिकार कार्यकर्त्ता और कृषक मुक्ति संग्राम समिति (केएमएसएस) - असम में आदिवासी समुदायों के बीच उनके ज़मीन के अधिकारों के बचाव में कार्यरत संस्था - के अध्यक्ष को दिसम्बर 2019 में गिरफ्तार गया। उस समय असम भी सीएए के विरोध में हिंसक दंगों को जी रहा था। आसिफ़ सुल्तान, एक पुरस्कार विजेता कश्मीरी पत्रकार, अगस्त 2018 से 'राज्य के खिलाफ लिखे हैं' के अपराध में जेल में हैं। जबसे उन्होंने 22 वर्षीय अलगाववादी उग्रवादी नेता, बुरहान वानी की पहली बरसी के कुछ दिन पहले उसकी ज़िन्दगी का रेखाचित्र प्रस्तुत किया था, तब से शासन उसके पीछे पड़ी थी।

हाथरस में चार ठाकुर लड़कों द्वारा एक दलित लड़की का बलात्कार और हत्या, और उसके बाद मुख्य मंत्री अजय बिष्ट के नेतृत्व में उत्तर प्रदेश शासन द्वारा पीड़ित परिवार के साथ किये गये दुर्व्यवहार से जाति वर्चस्व को बनाये रखने के लिए हमारे देश में खेली जा रही विसंगतियों की झलक फिर से सामने आयी। हाथरस की इस वारदात को कवर करने जा रहे पत्रकारों को गिरफ्तार कर यूएपीए के अंतर्गत धाराएँ लगायी हैं, कि ये क्षेत्र में शान्ति भंग करने के षड़यंत्र से यहां जा रहे थे। पीड़ित परिवार को समर्थन देने वाले भीम आर्मी के सदस्य और अन्य मानव अधिकार कार्यकर्ताओं को गिरफ्तार और पुनः गिरफ्तार करने के लिए खुल्ले एफआईआर दर्ज कर दिये गए हैं।

एक तरफ तो ज़मानत की सुनवाइयां पहले ही प्रक्रिया में होने वाली देरी से बुरी तरह प्रभावित होती हैं, दूसरी तरफ ये कार्यकर्ता अमानवीय परिस्थितियों में अलग-अलग कमरों में कैदियों को दिये जाने वाले मूलभूत अधिकारों से भी वंचित रखे जाते हैं। इससे विशेषतया कम आय वाले, हाशिये में रहने वाले और दलित पृष्ठभूमि से आने वाले कैदियों की दयनीय स्थिति का अनुमान लगाया जा सकता है जिन्हें अपने जीवन के उत्पादक अंशों के बहुत से साल जेल में सुधार और न्याय की सहायता के बिना गुज़ारने पड़ते हैं। इस परिस्थिति में बहुत उम्मीद नहीं रखी जा सकती है।

इस समय यह सवाल महत्वपूर्ण हो जाता है कि क्या किया जाना चाहिये, जब देश एक अभूतपूर्व आर्थिक संकट में धकेल दिया गया

है, नौकरी के अवसर कम हो गये हैं, पढ़ाई में छात्रवृत्तियों में कटौती हो रही है, बिना किसी पूर्वसूचना के बैंक बंद हो रहे हैं, लोग एक पल में अपनी गाढ़े पसीने की कमाई खो रहे हैं, और वहीं इन सवालों को पूछने की जगह काफी सिकुड़ गई है। दूसरी ओर वीभत्स रूप से घृणा का प्रचार, औरों को अपने से अलग करना और अतिराष्ट्रवाद का भद्दा रूप प्रदर्शित किया जा रहा है।

हम आपसे अनुरोध करते हैं कि आप आइये और सम्मिलित होइये। और जो कोई भी ज़रिया मिले, जैसे अपने परिवार और मित्र आदि, उनके साथ बातचीत करें।

सरकार का एजेंडा स्पष्ट है। कट्टर धार्मिक राष्ट्रवाद के नाम पर अशान्ति व उन्माद के बीच अल्पसंख्यकों को निशाना बनाते हुए, और लोगों को 'नक्सल', 'आतंकवादी' और ऐसे कुछ बोलकर मीडिया में एक मुकदमा चलाते रहने के साथ, वह धीरे-धीरे देश के महत्त्वपूर्ण संसाधन, विशेषकर वनों को बड़े-बड़े निगमों को बेच रही है। विकास के नाम पर सरकार गरीब से गरीब लोगों के घर और आजीविका नष्ट कर रही है। एक दिन इतिहास हमसे पूछेगा कि इस मुश्किल घड़ी में हम कहां थे? आइये, हम कहें कि उस समय हम संगठित थे और एक बेहतर व समानतापूर्ण संसार को संगठित करने की ओर कदम बढ़ाएं क्योंकि हम जिनका विरोध कर रहे हैं वे पूरी तरह से संगठित, बेहद बलशाली और दृढ़-संकल्प हैं।

हमारा अनुरोध है कि आप अपनी स्थानीय भाषा में इस पुस्तिका को छापें और भीमा कोरेगांव में जो हुआ उसकी सच्चाई सबके सामने रखें। हम यह भी अनुरोध करते हैं कि यूएपीए जैसे भयावह कानूनों के विरुद्ध अपनी आवाज़ उठायें और असहमति की जगहों को बचाने में सहायता करें।

अगर देशप्रेम को परिभाषित करने में सरकार की ओर अंधी आज्ञापालनता नहीं, न ही झंडों और गान के प्रति विनम्र पूजा, वरन अपने देश और अपने साथी नागरिकों (दुनिया भर में) के लिए प्यार, न्याय और लोकतांत्रिकता के सिद्धांतों के प्रति निष्ठा हो, तब देशप्रेम मांगेगा कि जब हमारी सरकार इन सिद्धांतों का तिरस्कार करे, तब हम इसकी आज्ञाभंग करें।

होवार्ड ज़िन्न

यौन हिंसा व् राजकीय दमन के खिलाफ महिलाएं (wss)

यौन हिंसा व् राजकीय दमन के खिलाफ महिलाएं (wss) नवम्बर 2009 में गठित एक गैर-अनुदान प्राप्त ज़मीने प्रयास है| इस अभियान का मकसद है - हमारे शरीर व् हमारे समाज पर हो रही हिंसा को ख़त्म करना| हमारे नेटवर्क पूरे देश में फैला हुआ है और इसमें शामिल हम औरतें अनेक राजनीतिक परिपाटियों, जन संगठनों, नारी संगठनों, छात्र व् युवा संगठनों, नागरिक अधिकार संगठनों एवं व्यक्तिगत स्तर पर हिंसा व दमन के खिलाफ सक्रीय हैं| हम औरतों व लड़कियों के विरुद्ध किसी भी अपराधी/ अपराधियों द्वारा की जा रही यौन हिंसा व राजकीय दमन के खिलाफ हैं|

संपर्क

Email: againstsexualviolence@gmail.com

Website: www.wssnet.org

मूल्य: ५० रुपये

मूल किताब - "A QUEST FOR FREEDOM" (2019): मुंबई राइज़िस टू सेव डेमाक्रेसी (MRSD)
नवीनीकृत हिन्दी अनुवाद: यौन हिंसा व राजकीय दमन के खिलाफ महिलाएं (WSS)
मार्च 2021 में प्रकाशित